भगवत्कृपाके चमत्कार

सम्पादक

हनुमानप्रसाद पोद्दार

भगवान्की दयालुता पर विश्वास

जब तक मनुष्य परमात्माको नहीं प्राप्त कर लेता, तबतक नित्य नये जालों में फँसता ही रहता है। हम लोग अनन्त जन्मों से यही करते आ रहे हैं। परन्तु यह नहीं मानना चाहिए कि उबरनेकी कोई सूरत नहीं है। तुम्हें भगवान्पर श्रद्धा रखनी चाहिए कि वे उबारनेवाले हैं, उनकी शरण लेते ही सारे जाल सदाके लिए कट जाते हैं। घबराओ नहीं, 'अटकी नाव' भगवत्कृपाके – अनुभवरूपी अनुकूल वायुका एक झोंका लगते ही चल पड़ेगी। भगवान्की दयालुता पर विश्वास करो। जो दुःख, कष्ट और विपत्तियाँ आ रही हैं, उन्हें भगवत्कृपाका आशीर्वाद समझो और प्रत्येक कष्ट के रूपमें कृष्ण-कन्हैयाके दर्शन कर उन्हें अपनी सारी सत्ता समर्पण करनेकी चेष्टा करो, कष्टोंको कृष्णरूपमें वरण करो, सिर चढ़ाओ, आलिंगन करो। परन्तु उनसे छूटनेके लिए कभी भूलकर भी कुमार्गपर चलने की कायरताके वश मत होओ; लड़ते रहो – मनकी बुरी वृत्तियोंसे – ऐसा करोगे तो श्रीकृष्णकृपासे तुम्हारी एक दिन अवश्य विजय होगी, तुम सुखी होओगे। शरीर और मनसे प्रसन्न रहने की निरन्तर चेष्टा करते रहो। भगवान्के नामका जप सदा करते रहो और उसे उत्तरोत्तर बढ़ाओ।

.........हनुमानप्रसाद पोद्दार

Bhagwat Kripa ke Chamatkar

editor

Hanuman Prasad Poddar

प्रकाशक

गीतावाटिका प्रकाशन

(पद-रत्नाकर सेवा शोध संस्थानका प्रकल्प)

पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६

फोन : (०५५१) २२८७७६२, २२८२१८२

e-mail : rasendu@hotmail.Com

प्रथम संस्करण—श्रीराधाष्टमी जन्मोत्सव सं० २०६३ वि०

मूल्य : तीस रुपये

विषय सूची

******

नम्र निवेदन

आज मानव-समाजका स्तर बहुत नीचेकी ओर जा रहा है। राग-द्वेष, कलह-विरोध, वैर-हिंसा, असत्य-स्तेय, छल-कपट, दम्भ-द्रोह, ईर्षा-प्रतिहिंसा, अभिमान-गर्व, मन-इन्द्रियोंकी गुलामी, कायरता-कुचेष्टा, पर-सुख-कातरता और पर-दुःख-परायणता, नीच कामना और स्वार्थपरता, कामोपभोग-परायणता, मतवाद और दलबंदी आदि मानव-समाजसे मानवताका अपहरण करनेवाले दोषोंका प्रचार-प्रसार और विस्तार हो रहा है! भारतवर्षमें भी ये सब दोष बड़ी तेजीसे फैल रहे हैं और हमलोग इन्हें स्वराज्य-शिशुके शुभ जन्मके बाद होनेवाली सहज अस्थायी मातृपीड़ाके रूपमें सहन कर रहे हैं, अथवा जहाँ दोषोंके संगसे हमारी बुद्धि कलुषित हो गयी है एवं तमसाच्छन्न होनेके कारण वह विपरीतदर्शिनी हो गयी है, वहाँ इन दोषोंमें 'सद्गुण-बुद्धि' और इनसे होनेवाले पतनमें 'उत्थान-बुद्धि' होनेसे हम इन्हें उन्नतिका लक्षण मानकर सहर्ष अपना रहे हैं! भगवान् जो नित्य, सत्य, चिदानन्द-स्वरूप हैं, जो परम सत् हैं, जिनका बोध या प्राप्त करना ही मानव-जीवनका चरम और परम उद्देश्य है, उन्हें मूर्खोंकी कल्पना मानकर उनको अस्वीकार कर रहे हैं। यह जो 'सत्' रूप परमात्माका तथा उनके अनुकूल तथा उनकी प्राप्तिके साधन-स्वरूप दैवी सम्पदाके 'सत्' गुणों, सद्भावों तथा सत्-क्रियाओंका अस्वीकार और भागवद्विरोधी असद् भावोंका तथा दुर्गुण, दुर्भाव, दुष्क्रियारूप 'असत्' का स्वीकार है, यह निश्चय ही हमारे लिये भयानक दुष्परिणामका कारण होगा। अपने राष्ट्रको तथा मानव-जातिको इससे बचाना अत्यावश्यक है। यह आजका सबसे अधिक आवश्यक कार्य है। यह न हुआ और संसारके प्राणी 'सत्' का परित्याग कर 'असत्' की सेवामें लगे रहे तो संसार सचमुच दुःखार्णव बन जायगा।

इसके लिये भी इस प्रकारके ग्रन्थोंके प्रकाशन और प्रचार-प्रसारकी परम आवश्यकता है, जिनसे जनसमुदायमें सद्भावना फैले, लोगोंके सात्त्विक तथा शुभ चरित्रका निर्माण हो, हमारे राष्ट्रपुरुषकी बड़े उच्चस्तरपर प्रतिष्ठा हो और उसके आदर्शसे विश्व-मानवताको प्रकाश मिले एवं वह अपने नित्य सत् भगवत्-स्वरूपकी उपलब्धि कर सके।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

भगवत्कृपाके चमत्कार

भगवान्‌का मङ्गल विधान

(लेखक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार)

(१)

पुरानी बात है—कलकत्तेमें सर कैलासचन्द्र वसु प्रसिद्ध डाक्टर हो गये हैं। उनकी माता बीमार थीं। एक दिन श्रीवसु महोदयने देखा—माताकी बीमारी बढ़ गयी है, कब प्राण चले जायँ, कुछ पता नहीं। रात्रिका समय था। कैलास बाबूने बड़ी नम्रताके साथ माताजीसे पूछा—'माँ, तुम्हारे मनमें किसी चीजकी इच्छा हो तो बताओ, मैं उसे पूरी कर दूँ।' माता कुछ देर चुप रहकर बोलीं—'बेटा! उस दिन मैंने बंबईके अंजीर खाये थे। मेरी इच्छा है अंजीर मिल जायँ तो मैं खा लूँ।' उन दिनों कलकत्तेके बाजारमें हरे अंजीर नहीं मिलते थे। बंबईसे मँगानेमें समय अपेक्षित था। हवाई जहाज थे नहीं। रेलके मार्गसे भी आजकलकी अपेक्षा अधिक समय लगता था। कैलास बाबू बड़े दुखी हो गये—माँने अन्तिम समयमें एक चीज माँगी और मैं माँकी उस माँगको पूरी नहीं कर सका, इससे बढ़कर मेरे लिये दुःखकी बात और क्या होगी? पर कुछ भी उपाय नहीं सूझा। रुपयोंसे मिलनेवाली चीज होती तो कोई बात ही नहीं थी। कलकत्ते या बंगालमें कहीं अंजीर होते नहीं, बाजारमें मिलते नहीं। बंबईसे आनेमें तीन दिन लगते हैं। टेलीफोन भी नहीं जो सूचना दे दें। तबतक पता नहीं—माताजी जीवित रहें या नहीं, अथवा जीवित भी रहें तो खा सकें या नहीं। कैलास बाबू निराश होकर पड़ गये और मन-ही-मन रोते हुए कहने लगे—'हे भगवन्! क्या मैं इतना अभागा हूँ कि माँकी अन्तिम चाहको पूरी होते नहीं देखूँगा।'

रातके लगभग ग्यारह बजे किसीने दरवाजा खोलनेके लिये बाहरसे आवाज दी। डाक्टर वसुने समझा, किसी रोगीके यहाँसे बुलावा आया होगा।

उनका चित्त बहुत खिन्न था। उन्होंने कह दिया—'मैं बुलाने नहीं आया हूँ, एक चीज लेकर आया हूँ—दरवाजा खोलिये।' दरवाजा खोला गया। सुन्दर टोकरी हाथमें लिये एक दरवानने भीतर आकर कहा—'डाक्टर साहेब! हमारे बाबूजी अभी बंबईसे आये हैं, वे सबेरे ही रंगून चले जायँगे, उन्होंने यह अंजीरकी टोकरी भेजी है, वे बंबईसे लाये हैं। मुझसे कहा है कि मैं सबेरे चला जाऊँगा—अभी अंजीर दे आओ। इसीलिये मैं अभी लेकर आ गया। कष्टके लिये क्षमा कीजियेगा।'

कैलास बाबू अंजीरका नाम सुनते ही उछल पड़े। उन्हें उस समय कितना और कैसा अभूतपूर्व आनन्द हुआ, इसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। उनकी आँखोंमें हर्षके आँसू आ गये, शरीरमें आनन्दसे रोमाञ्च हो आया। अंजीरकी टोकरीको लेकर वे माताजीके पास पहुँचे और बोले—'माँ! लो—भगवान्ने अंजीर तुम्हारे लिये भेजे हैं।' उस समय माताका प्रसन्नमुख देखकर कैलास बाबू इतने प्रसन्न हुए मानो उन्हें जीवनका परम दुर्लभ महान् फल प्राप्त हो गया हो।

बात यह थी, एक गुजराती सज्जन, जिनका फॉर्म कलकत्ते और रंगूनमें भी था, डाक्टर कैलास बाबूके बड़े प्रेमी थे। वे जब-जब बंबईसे आते, तब अंजीर लाया करते थे। भगवान्के मङ्गल विधानका आश्चर्य देखिये, कैलास बाबूकी मरणासन्न माता आज रातको अंजीर चाहती है और उसकी चाहको पूर्ण करनेकी व्यवस्था बंबईमें चार दिन पहले ही हो जाती है और ठीक समयपर अंजीर कलकत्ते उनके पास आ पहुँचते हैं! एक दिन पीछे भी नहीं, पहले भी नहीं। डा० कैलाशचन्द्र महोदयने यह घटना स्वयं मुझे सुनायी थी। बहुत दिनोंकी बात होनेसे लिखनेमें कुछ साधारण गलती भी रह सकती है।

(२)

पुरानी बात है। स्वर्गीय भाई कृष्णकान्तजी मालवीय नैनी जेलमें थे, उनको बस्ती स्थानान्तरित किया गया। श्रीकृष्णकान्तजी मुझे अपना भाई मानते थे। उनकी मेरे प्रति अकृत्रिम प्रीति तथा परम आत्मीयता थी। इससे उन्होंने गीताप्रेसके पतेसे मेरे नाम तार दिया कि 'हमलोग कई आदमी रेलसे गोरखपुर होकर बस्ती जा रहे हैं—गोरखपुर स्टेशनपर भोजनकी व्यवस्था

कीजिये।' गोरखपुरमें उन दिनों संध्याको लगभग पाँच बजे ट्रेन पहुँचती थी। तार गीताप्रेसमें आया। उन लोगोंने कुछ भी व्यवस्था न करके तार मेरे पास एक साइकिलवाले आदमीके हाथ भेज दिया, मैं प्रेससे लगभग साढ़े तीन मील दूर ऐसी जगह रहता था, जहाँ उन दिनों इक्के, ताँगे कुछ भी नहीं मिलते थे। न मोटर थी, न टेलीफोन। वह आदमी लगभग ४॥। बजे मेरे पास पहुँचा। घरमें भोजनका सामान भी बनाया तैयार नहीं था। प्रेसके लोगोंपर मुझे झुँझलाहट हुई कि उन्होंने व्यवस्था न करके तार मेरे पास क्यों भेज दिया। स्टेशन यहाँसे तीन मील दूर है, सवारी पास नहीं, सामान तैयार नहीं। कुल १५। २० मिनटका समय ट्रेन आनेमें है। मेरे मनमें बड़ा खेद था—'भाई कृष्णकान्तजीको भोजन नहीं मिलेगा, वे क्या समझेंगे।'—मैंने भगवान्‌को स्मरण किया।

इतनेमें देखता हूँ तो दो इक्के आकर बगीचेमें खड़े हो गये। साथ एक सज्जन थे। उन्होंने कहा, 'बाबू बालमुकुन्दजीके यहाँ प्रसाद था, उन्होंने आपके लिये भेजा है। मैं जिस बगीचेमें रहता था, वह उन्हींका था, वे मेरे प्रति बड़ा स्नेह रखते थे। मैंने देखा—कई तरहकी मिठाई, पूरी, नमकीन, साग, अचार, सूखा मेवा, फल पर्याप्त मात्रामें हैं। मेरी प्रसन्नताका पार नहीं। मैंने मन-ही-मन कहा—भगवान्‌ने कैसी सुनी। उन्हीं इक्कोंको पूरे सामानसहित एक आदमी साथ देकर मैंने स्टेशन भेज दिया—कह दिया—जल्दी ले जाना, कहीं गाड़ी छूट न जाय। गाड़ी दस-पंद्रह मिनट लेट आयी। सामान पहुँच गया। वे लोग एक दर्जनसे ज्यादा आदमी थे। सबने भरपेट भोजन किया। मेरा आदमी लौटकर आया, तबतक मुझे चिन्ता रही कहीं गाड़ी छूट तो नहीं गयी होगी। आदमीने लौटकर सब समाचार सुनाया तो मेरे हृदयमें भगवान्‌के मङ्गल विधानके प्रति महान् विश्वास हो गया। कैसा सुन्दर विधान है? मुझे जरूरत पौने पाँच बजे हुई, तार अभी मिला। परंतु उस जरूरतको पूरी करनेकी तैयारी कहीं बहुत पहले हो गयी और ठीक जरूरतके समयपर सामान पहुँच गया। सामान भी इतना कि जिससे इतने लोग तृप्त हो गये। मुझे तो पता भी नहीं था कि कितने आदमी खानेवाले हैं। इक्के भी साथ आ गये—जिससे सामान स्टेशनपर भेजा जा सका। ठीक समयपर सामान पहुँचा। एक घंटे बाद पहुँचता, तब भी इस काममें नहीं आता और दो-

एक घंटे पहले पहुँच गया होता तो उसे दूसरे काममें ले लिया जाता, इस कामके लिये नहीं बचता।'

इससे सिद्ध होता है कि कोई ऐसी सदा जाग्रत् रहकर व्यवस्था करनेवाली अचिन्त्य महान् शक्ति है जो आगे-से-आगे यथायोग्य व्यवस्था करती रहती है—और वही शक्ति जगत्‌का संचालन करती है। उसके मङ्गल विधानके अनुसार सब कार्य सुव्यवस्थिततसे होते रहते हैं। जो स्थिति अब सामने आती है, उसकी तैयारी बहुत पहले हो जाती है। मनुष्य उस परम शक्तिपर विश्वास करके निश्चिन्त रह सके तो भगवान्‌की सेवाके भावसे सब कार्य करता हुआ भी वह सदा सुखी रह सकता है।

******

समझने-सीखनेकी चीज

तुम अन्नपूर्णा माँ रमा हो और हम भूखों मरें?

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

कल सायंकालकी ही तो बात है।

गाँधी-मैदानमें बैठा देख रहा था भगवान् अंशुमालीकी ओर, जो द्रुतगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे थे।

अचानक एक वृद्ध बंगाली सज्जन आकर मेरी बेंचपर बैठ गये।

सफेद दाढ़ी, सफेद कुर्ता-धोती, हाथमें बंगलाका एक दैनिक।

बात शुरू की उन्होंने।

सामान्य परिचयकी चर्चा उठी तो काशीका नाम आते ही श्रद्धासे भट्टाचार्य महाशयका हृदय भर उठा। बोले—'काशी तो कैलाश है। परंतु अब कहाँ रह गयी वह काशी? अब तो वह कलकत्ता-जैसी नगरी बनती जा रही है! क्या ख्याल है आपका?'

मैं क्या कहता! काशीमें भी आधुनिकताका रंग आ ही रहा है।

× × × ×

'बाबा विश्वनाथकी नगरी में, माँ अन्नपूर्णाके दरबारमें कभी कोई भूखा नहीं रह सकता। इस बातकी लोगोंने परीक्षा करके देखी है।' कहते-कहते वे सुना गये ८०-८५ साल पहलेकी एक घटना।

बोले—मेरे ही पूर्व पुरुषोंके सम्बन्धी एक वृद्ध दम्पत्तिने काशीवासका निर्णय किया। उनका एक भतीजा था, जो कलकत्तेमें नौकरी करता था। उसने उन्हें काशी पहुँचा दिया और उनके खर्चके लिये बीस रुपया मासिक भेजने लगा।

उस जमानेमें बीस रुपयेका मूल्य बहुत था। वृद्ध ब्राह्मण-दम्पति स्वयं तो मजेमें अपनी गुजर करते ही, साधु-संन्यासियोंकी भी सेवा करते, फिर भी दस-पाँच रुपया बच जाता।

× × × ×

अचानक भतीजेकी नौकरी छूट गयी। दो महीनेके खर्चके लिये चालीस रुपये भेजते हुए उसने लिखा—'ताऊजी! मेरी नौकरी छूट गयी है। दो महीनेकी तनख्वाह मिली है, इससे आपको भी दो माहका खर्च भेज रहा हूँ। कौन जाने कितने दिन बेकार रहना पड़े। इसलिये जरा हाथ रोककर खर्च करियेगा। आपके आशीर्वादसे मुझे शीघ्र ही नौकरी मिल जायगी, ऐसी आशा है।'

वृद्ध दम्पतिको चिन्ता तो हुई, पर उन्होंने सब कुछ बाबा विश्वनाथ और अन्नपूर्णामाईपर छोड़ दिया।

× × × ×

पहलेकी संचित निधि और अन्तमें मिले चालीस रुपयोंमें वृद्ध दम्पतिने छः मासतक काम चलाया। अन्तमें एक दिन ऐसा आ ही गया, जब शकरकन्दका एक टुकड़ा घरमें बचा रहा। उसीको खाकर दोनोंने पानी पी लिया। दिन भर यों ही निकल गया।

× × × ×

उन दिनों कुछ मारवाड़ी सज्जन सीधा बाँटा करते थे। एक-एक सीधेमें आटा, दाल, चावल, घी आदि पर्याप्त रहता। लगभग ३) का सामान, ऊपरसे २) दक्षिणा भी देते। सेठके कर्मचारी उन लोगोंके घर सीधा पहुँचा आते थे, जिनके प्रति सेठकी श्रद्धा होती थी।

× × × ×

वृद्ध ब्राह्मण दम्पतिका तो निश्चय था कि वे विश्वनाथकी नगरीमें माँ अन्नपूर्णाके रहते किसीसे भिक्षा माँगकर पेट न भरेंगे। वे चुपचाप पड़े

थे अपनी कोठरीमें।

× × × ×

दूसरे दिन वृद्ध दम्पतिकी कोठरीके बाहर एक अपरूप बालिका आ खड़ी हुई। सीधा बाँटनेवाले सेठके कर्मचारी वहाँसे निकले तो उसने उन्हें पास बुलाया। उनके पास आनेपर बोली—'देखो भाई! मेरी बूढ़ी माँ और बाबा कलसे भूखे पड़े हैं। तुम एक सीधा हमें भी दे जाओ।'

कर्मचारी बोले—'सीधा हम उन्हीं लोगोंको बाँटते हैं जिनको बाँटनेकी आज्ञा हमारा सेठ देता है। बिना आज्ञा हम सीधा नहीं बाँट सकते।'

वह बालिका आँखोंमें आँसू भरकर बोली—'तो क्या होगा बाबा? मेरे बूढ़े माँ-बाबाके पास कुछ नहीं है। मर जायँगे वे बिना भोजनके? अपने सेठसे कहो न जाकर कि मेरे माँ-बाबा भूखे पड़े हैं कलसे।'

'अच्छा माँ! हम सेठसे जाकर जरूर कहेंगे।'

बालिकाकी बात टालनेकी क्षमता मानो उनमें थी ही नहीं।

× × × ×

सेठसे उसके कर्मचारियोंने जाकर कहा—'सेठजी! रास्तेमें एक बालिका हमें मिली थी। बड़े सम्पन्न घरकी लड़की जान पड़ती थी। वह कह रही थी कि उसके बूढ़े माता-पिताने कलसे कुछ नहीं खाया है। उनके लिये उसने एक सीधा माँगा है। उनके लिये उसने एक सीधा माँगा है।'

× × × ×

सेठजीके मनमें आ गया—चलो देखें।

सीधा लेकर वे कर्मचारियोंके साथ वृद्ध ब्राह्मण दम्पतिके मकानपर पहुँचे। कुंडी खटखटायी। वृद्ध दम्पतिने किसी तरह दरवाजा खोला। सेठने उनसे पूछा—'बाबा, आपकी बेटी कहाँ है?'

वे तो हैरान। बोले—'कहाँ? हमारे तो कोई बेटी नहीं, एक भतीजा है जो कलकत्तेमें रहता है।'

'अच्छा, यह तो बताइये, आपने कलसे कुछ खाया-पिया है या नहीं?'

'क्यों हमने तो किसीसे कुछ कहा नहीं!'

'आपकी बेटी कह रही थी कि मेरे माँ-बाबा कलसे भूखे हैं। भूखसे उनके प्राण जा रहे हैं!'

'सेठजी, और किसीने कहा होगा। आप मकान भूल तो नहीं गये हैं?'

सेठने कर्मचारियोंसे पूछा। वे बोले—'नहीं सेठजी, यही मकान है। हमें खूब याद है। यहाँपर वह लड़की रो-रोकर हमसे कह रही थी कि मेरे बूढ़े बाबा और माँ भूखे हैं कलसे। उन्हें एक सीधा दे जाओ।'

× × × ×

सेठके बहुत कहनेपर वृद्ध दम्पतिने बताया कि बाबा विश्वनाथ और माँ अन्नपूर्णाको छोड़कर और कोई नहीं जानता कि हम दोनोंने कलसे कुछ नहीं खाया। हमने किसीसे कहा ही नहीं।

× × × ×

माँ अन्नपूर्णा भला अपने भक्तोंको भूखा रहने दे सकती हैं? यह भला हो ही कैसे सकता है—

'तुम अन्नपूर्णा माँ रमा हो और हम भूखों मरें?'

× × × ×

सेठका आग्रह स्वीकार कर वृद्ध दम्पतिको उसका सीधा लेना ही पड़ा और तबसे नियमित रूपसे वहाँ भी सीधा आने लगा।

× × × ×

कुछ दिनोंके बाद भतीजेका पत्र आया जिसमें लिखा था—'ताऊजी! आपलोगोंके आशीर्वादसे मुझे पहलेसे भी अच्छी नौकरी मिल गयी है। अब मैं आपको तीस रुपये मासिक भेजा करूँगा। खाना बनानेमें आपको बड़ा कष्ट होता होगा। कोई दाई आदि रख लीजियेगा।'

× × × ×

वृद्ध दम्पतिको भतीजेका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। उन्होंने सेठकी कोठीपर जाकर उनसे भेंट की और उनसे अनुरोध किया कि वे अब उनको मिलनेवाला सीधा किसी अन्य व्यक्तिको दे दिया करें; क्योंकि अब उनके भतीजेको काम मिल गया।

भतीजेका पत्र भी उन्होंने सेठको दिखाया। पर सेठ बोला—'यह नहीं हो सकता बाबा! आप नाराज न हों। जैसा आपका वह भतीजा, वैसे ही मैं आपका बेटा। आपको तो यह सीधा लेना ही होगा!'

वृद्ध दम्पति सेठके आग्रहको टाल नहीं सके। सेठके यहाँसे सीधा

आता रहा। भतीजेके यहाँसे आनेवाले पैसेसे वे साधु-संन्यासियों और दीनोंकी सेवा करने लगे।

× × × ×

श्रद्धा और विश्वासकी कैसी अद्भुत कहानी।

'यह सारा खेल श्रद्धा और विश्वासका ही तो है।' कहते हुए भट्टाचार्य महाशयने एक और घटना सुनायी।

घटना है उनकी माताकी मौसीके सम्बन्धमें।

वैधव्यके दिन बिता रही थीं बेचारी। बाबा विश्वनाथजीके दर्शनोंको, काशी पहुँचनेकी बड़ी लालसा थी उनकी।

गरीबीका जाल बिछा था। श्रीरामपुरसे काशी पहुँचना विषम समस्या थी। उनकी एक ही रट थी—

'विश्वनाथ बाबा टाका दाओ, देखा दाओ!'

(हे बाबा विश्वनाथ! पैसा दो, दर्शन दो!)

× × × ×

अचानक एक दिन उन्हें एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि रेलवे कम्पनी एक नयी लाइन खोल रही है। उसके लिये तुम्हारी ससुरालकी जमीन रेलवेने ले ली है। उसका मुआविजा कलकत्ता आकर ले जाओ।

× × × ×

कलकत्ता जाते ही सात-आठ सौ रुपये मिल गये।

फिर विश्वनाथ बाबाके दर्शन करनेके लिये काशी जानेसे उन्हें कौन रोक सकता था?

× × × ×

काश, यह श्रद्धा, यह विश्वास हममें होता! फिर तो कुछ कहना ही नहीं था। पर हमारी तो वही दशा है जिसका चित्रण रामकृष्ण परमहंसने एक दृष्टान्तमें किया है—

एक ग्वालिन नदी-पारसे दूध लेकर आया करती थी। बरसातके दिनोंमें नाव देरमें मिलनेसे दूध पहुँचानेमें बड़ी देर होती। एक दिन पण्डितजी, जो उससे दूध लेते थे, उससे बोले—'तू रोज बड़ी देर कर देती है। क्यों नहीं तू रामका नाम लेकर नदी पार कर लिया करती! रामका नाम लेकर

लोग भवसागर पार कर जाते हैं। तुझसे यह नदी भी पार नहीं की जाती!'

दूसरे दिनसे पण्डितजीको सबेरे ही दूध मिलने लगा।

कई दिन बाद पण्डितजीने ग्वालिनसे पूछा—'अब तुझे रोज सबेरे ही नाव मिल जाती है?'

ग्वालिन बोली—'अब मुझे नावकी कौन जरूरत है महाराज! आपने जो तरकीब बता दी है, उससे मेरी नावकी उतराई भी बच जाती है!'

पण्डितजी हैरान होकर बोले—'कौन-सी तरकीब ग्वालिन?'

'वही राम-नामवाली तरकीब! मैं रामका नाम लेती हूँ और ऊधरसे इधर चली आती हूँ और इधरसे उधर चली जाती हूँ।'

'सच?'

'और क्या झूठ कहती हूँ महाराज?'

पण्डितजी आकाशसे गिरे। सहज ही विश्वास न हो सका उन्हें ग्वालिनकी बातपर। बोले—'मुझे दिखाओगी?'

'हाँ-हाँ, चलिये न?'

दोनों चल दिये। ग्वालिन रामका नाम लेकर झम-झम करती हुई नदी पार करने लगी। पण्डितजी राम-राम करके आगे बढ़े पर पानी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा त्यों-त्यों वे अपनी धोती ऊपर सरकाने लगे! स्थिति डूबने-जैसी होने लगी!

ग्वालिनने पीछे मुड़कर देखा। बोली—'यह क्या महाराज! आप रामका नाम भी लेते हैं और धोती भी समेटते जाते हैं?'

× × × ×

हम भी इसी तरह रामका नाम लेते हैं और धोती भी समेटते जाते हैं। ग्वालिन-जैसा विश्वास हममें कहाँ है? उस वृद्ध दम्पतिकी तरह हम माँ अन्नपूर्णापर अपनेको कहाँ छोड़ते हैं? उस विधवा ब्राह्मणीकी भाँति हम परम विश्वाससे कहाँ कहते हैं—'बाबा, टाका, दाओ, देखा दाओ!' फिर यदि हम भवाटवीमें भटकते रहते हैं तो दोष किसका?

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव कि लह बिश्राम॥

(कल्याण वर्ष २८, पृष्ठ १४२५)

* * * * * *

बालकका अनुभव

(लेखक—डा० श्रीएस०. मुरारी सिन्हा)

'क्या यह तुम्हारी कृति है?'

'जी, हाँ'

'तुमने अभीतक इसे किसीको नहीं दिखलाया है?'

'जी नहीं'

'अच्छा यह लो' मैंने फुल्स्केप कागजके कुछ पत्रोंको पकड़े हुए मुझसे बात करनेवाले उस १५-१६ वर्षके बालकसे कहा। परंतु उसने उन्हें लेनेके लिये हाथ नहीं बढ़ाया, उल्टे, पूछने लगा—

'क्या मैं जान सकता हूँ कि आपको यह चीज पसंद आयी या नहीं?'

'निःसंदेह, यह बहुत सुन्दर है। मैं तुम्हें इसकी सफलतापर बधाई देता हूँ।' मैंने कहा।

'धन्यवाद, महाशय!'

'क्या सचमुच यह तुम्हारे अनुभवकी बात है?'

'जी हाँ, यह सर्वथा मेरे अनुभवके आधारपर है। क्या मैं आपसे एक बात और पूछ सकता हूँ?'

'हाँ, हाँ, पूछो।'

'क्या किसी दैनिक अथवा मासिक पत्र-पत्रिकामें इसका प्रकाशन हो सकता है?'

'तो तुम्हारी यह इच्छा है। अच्छी बात है, कुछ दिन इसे मेरे पास रहने दो, देखूँगा, कदाचित् इसका प्रकाशन हो सके।'

× × × ×

एक दिन सबेरे, ज्यों ही मैं अपने पत्रालयको, जहाँ मैं सदा काम किया करता हूँ, जानेकी तैयारी कर ही रहा था कि एक छोटा बालक कुछ दिखलानेके लिये मेरे पास आया। बालक मेरा अपरिचित था, अतः कुछ आश्चर्य-सा हुआ। पर उसने बिना किसी प्रकारकी देर किये ही, तत्काल अपने प्रसंगकी बात छेड़ दी। अपने दाहिने हाथवाले कागजोंको मेरे सामने रक्खा और कहने लगा, 'मैंने अंग्रेजीमें यह कहानी लिखी है। यह (घटना)

मेरे अपने निजी अनुभवकी है। यदि आप समय निकालकर इसे पढ़ने और भाषा सुधारनेका कष्ट करेंगे तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा।'

मैं लड़केकी सरलता और सुन्दर व्यवहारपर मुग्ध हो गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि इसने कैसे जाना कि मैं एक पत्रकार हूँ। मैंने उससे इस सम्बन्धमें कुछ दिन बाद आनेके लिये कह दिया। उसने नम्रतासे अभिवादन किया और चल पड़ा।

उसी दिन संध्याको कार्यालयसे लौटनेके उपरान्त मैंने उसे पढ़ा। कहानी इस प्रकार थी—

मैं लखनऊके अलीगंज मुहल्लेमें अपनी माँके साथ रहता हूँ। मेरे कोई भी भाई अथवा बहिन नहीं है। मेरे पिताजी एक गरीब व्यक्ति थे। विगत महायुद्धमें वे सेनामें भर्ती हो गये और वहीं लड़ाईमें मारे गये। मेरी माँको थोड़ी-सी पेंशन मिलती है। वह पड़ोसियोंके लिये थोड़ा-बहुत सीने-पिरोनेका भी काम कर दिया करती है। इन सबसे मेरे अन्न-वस्त्र तथा स्कूलकी फीसका भी काम चल जाता है।

मैं अपनी माँसे बहुत अधिक प्रेम करता हूँ और केवल स्कूलके वक्त ही उसे छोड़ता हूँ और छुट्टी होते ही सीधे उसके पास आ जाता हूँ। वह इतनी अधिक सरल, दयालु और सहृदय है कि ईश्वरको मैं इसके लिये धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इतनी अच्छी माँ दी।

कभी-कभी मेरी माँको इतने बड़े जोरोंका सिर-दर्द होता है कि उसकी तीव्र वेदनाके कारण आत्मीयतावश मुझे भी उसी तरहकी मानसिक व्यथा होने लगती है। एक बार किसीने बतलाया कि सिर-दर्दमें एस्पिरिन बड़ा लाभ पहुँचाती है। इसलिये दूसरी बार जब माँ बाजार गयी तो दो एस्पिरिनकी टिकिया एक आना प्रति टिकियाके हिसाबसे खरीद लायी। अबकी बार जब पुनः सिर-दर्द हुआ तो उसने एक गोली पानीसे ले ली और आराम हो गया। दूसरी गोली भी शीघ्र ही समाप्त हो गयी।

उसके बाद भी माँको कई बार सिर-दर्द हुआ, परंतु वह अर्थाभावके कारण पुनः टिकिया न खरीद सकी। पर एक दिन शामको उसके सिरमें बड़े जोरोंका दर्द हुआ और वह एक टिकियाके लिये पागल-सी हो गयी। परंतु उस समय घरमें कोई न था।

माँने मुझे बुलाया और एक चवन्नी मेरे हाथमें रखते हुए कहा—'बेटा! मेरे सिरमें इस वक्त भयानक दर्द हो रहा है, अतः तुम सड़कपर चाँदबाग जाओ। वहाँ तुम्हें बस मिलेगी, छः पैसे देकर टिकिट खरीद लेना और सीधे हजरतगंज पहुँच जाना। वहाँसे एक आनेमें एस्पिरिनकी एक टिकिया खरीद लेना और पुनः बस पकड़कर चाँदबाग आ जाना और वहाँसे घर लौट आना।

मैंने रास्ता समझ लिया। जूता और टोपी पहनी। जेबमें पैसे रक्खे और शीघ्रतासे चल दिया। तत्काल मुड़कर मैंने माँसे कहा—'माँ! क्या मैं हजरतगंजतक पैदल चला जाऊँ? इससे तीन आने पैसे भी बच जायँगे।'

पर माँने समझा कि इतनी दूर पैदल चलनेसे यह अवश्य थक जायगा, अतः उसने कहा 'यदि तुम पैदल जाओगे तो बड़ी देर लगेगी इसलिये बससे ही जाओ। मैं तुम्हारा इंतजार कर रही हूँ।'

मैं करीब बीस मिनिटतक पैदल चला होऊँगा कि चाँदबाग आ गया। वहाँ एक बड़ी बस खड़ी थी। मैं अंदर गया और कण्डक्टरको चवन्नी देते हुए कहा, 'मुझे हजरतगंज जानेके लिये टिकिट दे दो।' उसने मुझे जंकशनतककी टिकिट दे दी और दो आने लौटा दिये।

'परंतु तुम्हें मुझको अभी दो पैसे और देने चाहिये' मैंने कहा।

'हाँ, पर इस समय मेरे पास फुटकर पैसे नहीं हैं, थोड़ी देर बाद दे दूँगा। जाइये, अपनी जगहपर बैठ जाइये।'

अतः मैं चला गया और दो सुसभ्य व्यक्तियोंके बीच अपनी जगहपर बैठ गया। थोड़ी देरमें गाड़ी चली और करीब दस मिनट बाद हजरतगंज आ गया। जब गाड़ी ठहरी, तब मैं उस टिकिट-विक्रेताके पास गया और उससे अपने दो पैसे माँगे।

'कौन-सा, दो पैसा?' उसने कहा, 'मैं तुम्हारे-जैसे भले मानुषोंको बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, उनका पेशा ही यही है। जरा टिकिट तो दिखाना, क्या इसके पीछे कुछ लिखा है? नहीं? तो फिर तुम्हें दो पैसा नहीं मिलेगा। अब चुपचाप भले आदमीकी तरह रास्ता पकड़ लीजिये।'

उसके बाद उसने मुझे बाहरकी ओर धक्का-सा दिया। दूसरे लोग अंदर आ गये और गाड़ी चल दी। मैं बाहर चला आया था। चुपचाप

अकेला खड़ा रह गया।

आखिर मैं एक दूकानपर गया और मैंने एक टिकिया खरीदी। इसमें एक आना खर्च हो गया। अब केवल एक आना बच रहा। पर बसका किराया तो छः पैसा लगेगा? समझमें नहीं आया कि क्या करूँ?

आखिर सोचा कि सैकड़ों भले आदमी सड़कपर चल रहे हैं। किसीसे भी दो पैसे माँगकर क्यों न शीघ्र लारीपर चढ़कर माँके पास पहुँच जाऊँ। पर मैं माँग न सका। अतः मैंने पैदल ही जाना निश्चय किया और सोचा कि माँको साफ-साफ सच्ची बात बतला दूँगा। मुझे विश्वास है कि वह पूरी तरह समझकर मुझे क्षमा कर देगी।

मैं इस प्रकार सोच ही रहा था कि मैंने एक बहुत बड़े जन-समूहको मन्दिरकी तरफ पूजा करनेके लिये जाते हुए देखा। उसी समय मुझे याद आया कि आज मंगलवार है। माँ भी प्रतिमंगलवारको अलीगंजवाले हनुमान्‌जीके मन्दिरको जाया करती और लौटनेपर प्रसाद दिया करती थी। पर आज वह नहीं जा सकी है।

अतः मैंने एक काम करना निश्चय किया। मेरे पास एक आना बचा था। मैं सीधे मन्दिर गया और यथाशक्ति सचाई और सरलतासे थोड़ी देर प्रार्थना की कि 'प्रभो! मेरी माँ स्वस्थ हो जाय।' प्रार्थना करनेके बाद मैंने पुजारीको पैसा दिया और लौटने लगा। पर उसने पुकारा और कहा, 'बच्चा!' प्रसाद तो लेते जाओ।' ऐसा कहकर, उसने दो पेड़े उठाये और एक दोनेमें रख दिये। जब वह यह सब कर रहा था तब मुझे एक चवन्नीका थोड़ा-सा हिस्सा उसमें चिपका हुआ नजर आया, उसने भी इसे देख लिया था। तब उसने मेरे मस्तकपर भगवान्‌का प्रसादी सिंदूर लगाया, कुछ बताशे दोनेमें रक्खे और कुछ सिंदूर दोनेके किनारेपर लगाकर, मुझे दे दिया।

'पर, पुजारीजी! दोनेमें तो एक चवन्नी है' मैंने कहा, 'क्या आपने नहीं देखी है।'

'हाँ, जब मैं तुम्हारे लिये प्रसाद उठा रहा था तो साथमें चवन्नी भी आ गयी। सम्भव है, तुम्हें पैसेकी जरूरत हो। महाराजजीकी यही इच्छा मालूम देती है। यह प्रसाद है, इसे ले लो, इन्कार न करो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें' पुजारीजीने कहा।

मेरी प्रसन्नताका कोई पार न रहा, मैंने पुनः श्रद्धासहित वन्दना की और दोना ले लिया। मेरा हृदय आनन्दसे परिपूर्ण था। यदि उस समय कोई मुझसे बोलना चाहता तो मैं बोल भी न सकता।

दोनेको हाथमें लिये मैं बस-स्टेशनपर आया। पहलेसे ही वहाँ कई आदमी खड़े थे। इतनेमें ही लारी आ गयी। मैंने देखा कि वही आदमी टिकिट बेच रहा है। मैंने उसे चवन्नी दी और उसने मुझे तीन आने लौटने। जब मैंने भूल बतलायी तब उसने धीमी-सी आवाजमें कहा, 'तुम्हारे दो पैसे मेरे पास रह गये, मुझे पता नहीं था कि तुम भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये जा रहे थे।' उसके बाद उसने उच्च स्वरमें कहा—'चलिये, चलिये, अपनी जगहपर बैठिये।' मैं चढ़ा और अपनी जगहपर बैठ गया। मेरी आँखोंसे आँसू झर रहे थे।

थोड़ी ही देरमें मैं अपने घर पहुँचा और माँके सामने दवा, प्रसाद और पैसोंको रख दिया तथा सारी बातें बता दीं। उसने प्यारसे मुझे गले लगा लिया और प्रसन्नतासे उछल पड़ी। उसके बाद उसने दवा ली और थोड़ी ही देर बाद उसने बतलाया कि उसके सिरमें अब बिल्कुल ही दर्द नहीं है।

यह एक सच्ची घटना है। इसमें मैंने रञ्चमात्र भी ऐसी कोई बात नहीं लिखी है जो असत्य हो। इस बातका ईश्वर साक्षी है।

अगली बार जब लड़का मेरे पास आया तो मैंने उसे तीस रुपये दिये और कहा कि तुम्हारी कहानीको एक पत्रिकाने प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है। शीघ्र ही उसका प्रकाशन हो जायगा। वह चुपचाप था। सम्भव है उसे मालूम न हो कि कहानी लिखना भी एक अर्थ-व्यवसाय है।

(२९ अगस्त १९५४ के 'पायनियर' से अनुवादित।)

(कल्याण वर्ष २८, पृष्ठ १४२८)

******

भगवत्कृपा

(लेखक—स्व० पं० श्रीहनुमानजी शर्मा)

चौमूँसे पश्चिममें एक कोसके अन्तरपर टाँकरड़ा एक क्षुद्र गाँव है। वहाँके अधिपति ठाकुर मुकुन्दसिंह साधारण श्रेणीके जागीरदार हैं। उनकी ओरसे गाँवमें किसी प्रकारका दुःख-संताप या दुर्व्यवहार नहीं—बस्ती ठाकुरोंको चाहती है और ठाकुर बस्तीको चाहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी उदार, दयालु, सच्चरित्र और भगवद्भक्त हैं। प्रातःकाल बड़े सबेरे शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर देवपूजा, गीतापाठ और भगवन्नाम-जप करती हैं तथा आये-गये अतिथिका अन्न, वस्त्र, आश्वासन और आश्रयादिसे सत्कार करती हैं।

गाँवके पृष्ठ भागमें श्रीरघुनाथजीका मन्दिर है। भगवान्‌की मूर्ति बड़ी विलक्षण और चमत्कृत है। वह अकेले विराजते हैं। साथमें सीताजी नहीं हैं। एक-दो बार नवीन मूर्ति लाकर प्रतिष्ठित की तो अलक्षित हो गयी। अतः अकेले रघुनाथजी ही विराजते हैं। विशेषता यह है कि प्रातःकालकी सेवा-पूजा और मध्याह्नका राजभोग होनेके सिवा सायंकालकी आरती आदि सब शयनावस्थामें ही होता है।

मुकुन्द और मुकुन्दपत्नीकी रघुनाथजीके प्रति अमिट श्रद्धा है। वह हर्ष, शोक या आपत्तिमें उन्हींका आश्रय लेते हैं। विक्रम संवत् १९९६ के श्रावणमें उनका बड़ा बेटा बीमार हो गया। वैद्य, हकीम और डाक्टरोंने अनेक उपाय किये, परंतु आराम नहीं आया। तब वैद्योंने कहा कि चन्द्रोदय दिया जाय तो अच्छा है, परंतु डाक्टर इसमें सहमत नहीं हुआ। उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि दवा दी जायगी तो यह मर जायगा। इस कथनसे कठिन समस्या उपस्थित हो गयी—डाक्टर चला गया।

अर्धरात्रि व्यतीत हो गयी, गाँवमें सर्वत्र सन्नाटा छा गया। बीमारके समीप सेवकगण चिन्तामग्न हो रहे थे और ठाकुर मुकुन्दसिंह उदयकी मरणासन्न अवस्था देखकर वहीं एक तख्तेपर लेट गये थे। रातके लगभग तीन बजे स्वप्नमें दो संन्यासी आये। उन्होंने रोगग्रस्त उदयसिंहको रघुनाथजीके समीप उपस्थित करके औषध देनेका प्रयत्न किया। यह देखकर मुकुन्दने कहा

कि 'महराज औषधके लिये डाक्टर मना कर गया है, अतः आप बच्चेपर दया करके औषधका उपचार न करें।' परंतु संन्यासियोंने कुछ नहीं सुना और हठात् औषध पिला दी।

ठाकुरोंके नेत्र खुल गये। देखते क्या हैं कि न संन्यासी हैं, न रघुनाथजीका मन्दिर है और न वह अशान्तिकारी दृश्य है। है केवल अपने पलंगपर सोया हुआ उदयसिंह। सो भी मृतप्राय नहीं चैतन्य-अवस्थामें है और समीपमें बैठी हुई भगवन्नाम-स्मरणमें तल्लीन माताको देख रहा है। इस पुनर्जीवनसे सबको संतोष हुआ और स्वप्नमें आये हुए संन्यासी अश्विनीकुमार प्रतीत हुए।

वास्तवमें यह रघुनाथजीकी असीम कृपाका ही फल है कि अस्तप्राय उदयको संन्यासियोंके द्वारा स्वप्नमें हठात् औषध दिलवायी और उसको आरोग्य लाभ करवाया। इस प्रान्तमें टाँकरड़ाके रघुनाथजी बड़े विख्यात हैं। विश्वासी भक्तोंको अभीष्ट फल देते हैं और मन्दिरमें किसी प्रकारकी आय न होनेपर भी नित्यकी सेवा-पूजा और नैमित्तिक व्रतोत्सवादिके सब काम यथोचित सम्पन्न हो जाते हैं—उनके अर्थव्ययसे कोई भाराक्रान्त नहीं होता।

विजयादशमी (दशहरा) के अवसरपर यहाँ रामलीला होती है। उसको देखनेके लिये कई गाँवके सैकड़ों मनुष्य आते हैं। रात्रिभर जागरण करते और रामचरित्रकी अद्भुत लीलाओंको देखकर प्रातःकाल प्रसाद लेकर चले जाते हैं। इस काममें जो कुछ खर्च होता है, रघुनाथकी कृपासे स्वतः प्राप्त होता है।

(कल्याण वर्ष २८, पृष्ठ १४९५)

******

दयामयकी दयालुता

(लेखक—श्रीदुर्गाप्रसाद तिवारी आयुर्वेदाचार्य)

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे जीवति॥

जाको राखे साइयाँ मार सकै ना कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥

उपर्युक्त श्लोकको गुरुमुखसे अध्ययन करनेके पश्चात् उसका वास्तविक

अर्थ आज मैं समझ पाया हूँ। आज मैं परमात्माकी परमानुकम्पासे पाठकोंके समक्ष आप-बीती सच्ची घटना प्रस्तुत करनेका सौभाग्य प्राप्त कर सका हूँ। दिनाङ्क ९। ३। ५४ का दिवस था। मेरे लघु भ्राताका विवाह-संस्कार दिनाङ्क १०। ३। ५४ को होनेके कारण सायंकाल ९। ३। ५४ को ७ बजे इन्दौरसे खंडवा जानेवाली रेलसे हमलोग चले। रात्रिको लगभग डेढ़ बजे सानन्द बरातियोंके साथ मैं पहुँच गया। हमें खिड़किया स्टेशन जाना था, वहाँ जानेवाली गाड़ीके आनेमें विलम्ब होनेसे मैं सभी बरातियोंको प्लेटफार्मपर ही छोड़कर अपने एक सम्बन्धी (साढू भाई) के पास मोहल्ला गणेशतलाई चला गया। उनको निमन्त्रित कर, उनके साथ ही लौटा। स्टेशनपर आनेके लिये पूर्वकी ओरसे चढ़ा। ऊपर जानेपर देखा कि गाड़ी खड़ी है। इतनेमें गाड़ीने सीटी दी। मैं ठीक इंजनके कुछ पास था, प्लेटफार्म उस ओर था। मेरे जानेके लिये केवल एक ही गाड़ी थी। मेरे साढू भाईने कहा कि 'भैया गाड़ी आ गयी और जानेवाली है।' मैं त्वरतासे-बढ़ा और इंजिनसे प्रथम डिब्बेमें चढ़ा, इतनेमें गाड़ीकी गति तीव्र हो गयी। मैंने द्वार खोलनेका प्रयास किया, पर वह बंद था, सहायता-दुर्भाग्यसे वह महिलाका डिब्बा था, द्वार तालेसे अवरुद्ध था। जितनी महिलाएँ बैठी थीं, सभी पंजाबी-सिन्धी थीं। मेरे कहे गये आर्तस्वर वे न समझ सकीं। मैंने सोचा अग्रिम रेलवे स्टेशनपर डब्बा बदल लूँगा। स्टेशन मथेला आया, पर गाड़ी न रुकी, गाड़ीकी एक महिलाने कहा—यह पंजाब मेल है। मैंने उनसे गाड़ी रुकवानेके लिये जंजीर खींचनेकी प्रार्थना की, परंतु मातृभाषाकी वैषम्यताके कारण कोई लाभ न निकला। निरुपाय होकर अशरणशरणके चरणोंका स्मरण संस्कृतके पठित श्लोकोंद्वारा करता हुआ, कोयलेके कणों, वायुके झकोरोंको सहन करता रहा।

× × × ×

प्रातःकाल होनेवाला था, जलकी तृषा व्यथित कर रही थी, परंतु सिर तथा पीठ, कमरमें शताधिक छिद्र रक्त निस्सरणकर पाँसोंकी गिट्टियोंको रकाई कर रहे थे। इसका मुझे कुछ भान न था, मुझे तो जलकी अत्यन्त चाह थी। उठनेके लिये प्रयत्न किया, न उठ सका, सहायताकी प्रार्थना की, कौन सहायक हो। प्रभुकी अनुकम्पासे जगज्जननी माता दुर्गाके कवच तथा द्वात्रिंशत्-स्तोत्रका मैंने उसी मूर्च्छितावस्थामें स्मरण किया और कृपावत्सल

करुणावरुणालयने ही मुझे उठनेकी शक्ति दी या वे ही मुझे उठा गये। जल-पिपासाकी शान्तिके लिये देखा, समीपमें ही एक दीपक अपने प्रकाशसे स्थानकी सूचना दे रहा है। मैं लड़खड़ाते पैरोंसे पहुँचा और जाकर रेलवेके कर्मचारी (पोटर) से जलकी याचना की, प्रत्युत्तरमें जलका अभाव बताया गया। प्लेटफार्मपर बैठे व्यक्तियोंने मुझे पागल समझा, इतनेमें ही स्टेशनका नाम पूछनेपर मुझे खैगाँव नाम बतलाया गया, बस, मैं तृषित पासके टीलेपर बने मकानपर पहुँचा और जलकी याचना की। यह मेरे श्वसुरका घर था। वे मेरी आवाज पहचानकर आश्चर्यमें भरे सहसा उठे। मैं जल माँगता हुआ बिस्तरपर गिर पड़ा। उन्होंने मुझे गौका दुग्ध पिलाया, अग्निसे तपाया। खून बहनेवाले स्थानोंपर टिंचर लगाया और १०। ३। ५४ को सुबह मुझे मूर्च्छितावस्थामें खंडवा ले गये और देहका उपचार किया। मेरी खिड़किया जानेवाली गाड़ी उस दिन करीब पाँच घंटे लेट थी। परमात्माकी दयासे तीन दिनोंमें मेरे सारे घाव अच्छे हो गये। दि० १२। ३। ५४ को मुझे मेरे कुटुम्बी इन्दौर ले आये। प्रभुकी दयालुतासे मेरी कोई अस्थि नहीं टूटी। एक मासमें मैं चलने-फिरने लग गया। कोई अङ्ग भी विकृत नहीं हुआ।

× × × ×

मैं पंजाब मेलसे कब, कैसे, कहाँपर गिरा, कैसे बेहोश हुआ तथा किसने मुझे झेला, जिससे मुझे सामान्य चोटें आयीं। दो लाइनोंके बीचमें लगभग तीन घंटे पड़ा रहा। ट्रेनें बराबर निकलती रहीं, मेरी रक्षा किसने की, यह तो रक्षक ही जानें। मैं लगभग १० मील मूर्च्छितावस्थामें दो स्टेशनोंको पार कर गया और विपिनमें पुलके सन्निकट ही गिरा और यदि मेरी ससुराल पास न होती तो क्या होता यह तो प्रभु ही जानें। परमात्माकी लीला अपार है!

(कल्याण वर्ष २८, पृष्ठ १४९६)

******

सतीत्वकी अग्नि-परीक्षा

उत्तर प्रदेशके एटा जिलेके गंजडुंडवारा ग्रामकी कंजर जातिकी १४-१५ वर्षीया इमरती नामकी एक विवाहिता बालिकापर उसके ससुरने चरित्रभ्रष्टताका दोषारोपण करते हुए घरसे उसके मायके छोड़ दिया। इसपर लड़कीके

पिता और भाईने अपनी जातिके पंचोंको अपनी ओरसे मार्गव्यय देकर बुलाया और तब एटा, सोरों, सहसवान, उझियानी, सहावर और गंजडुँडवारेके कंजरोंके पंच एकत्रित हो गये। उनके समक्ष समस्या रखकर प्रार्थना की कि मेरी कि मेरी बहिनपर झूठा दोषारोपण किया गया है। पंचोंने परीक्षा लेनेकी व्यवस्थाका निश्चय किया और तदनुसार उक्त लड़कीको एक कोरी धोती पहिनायी गयी। दूसरी ओर साठ कंडे जलाये गये और उनमें चार सेर वजनको लोहेकी एक कुदाल गरम की गयी, जो आगके समान लाल हो गयी और चिनगारियाँ छोड़ने लगी। एक सरपंच मुखियाने लड़कीसे कहा कि 'यदि तुझे भय हो तो अब भी परीक्षा मत दे।' उसने कहा कि 'मुझे कोई भय नहीं। मेरी परीक्षा चाहे जिस प्रकारसे कर लो।' तब उस सरपंचने इस लड़कीके दोनों हाथोंपर दो पान रखकर उन्हें कलाया (मौली), जो धर्मकार्योंमें कलाईपर बाँधी जाती है, से दोनों पानोंको बाँध दिया और अपने डगोंसे सात डग नापे जो सतरह हाथ लम्बाईके हुए, यहाँ निशान कर दिया और निकटवर्ती जामुनके वृक्षकी एक दोहरी टहनी तोड़कर वल्कल उतारकर उनसे दोनों सिरे उस लाल हुए लोहेसे उठाये और ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए कि 'हे भगवान्! इस लड़कीके सत्यकी रक्षा करना' और लड़कीने भी ईश्वरसे प्रार्थना की कि 'हे परमात्मा! मेरे सतीत्वकी सत्यताको प्रमाणित करना और मेरा धर्म सच्चा है तो यह बात सभीको प्रत्यक्ष करा देना।' और वह लाल लोहा उसके दोनों हाथोंपर उन टहनियोंसे उठाया हुआ रख दिया और लड़की नापी हुई जगहतक निःसंकोच निर्भयतासे चलती चली गयी और जगहसे आगेतक पहुँचकर वह लोहा जमीनपर डाल दिया। तब देखा गया कि जमीनकी घास जल गयी, मिट्टी काली पड़ गयी। लेकिन लड़कीके दोनों हाथोंपर रक्खे दोनों पान हरे बने रहे और कच्चे सूतका धागा वह कलाया जैसा-का-तैसा ही बना रहा। यह दृश्य दस-पाँच आदमियोंने नहीं, बल्कि करीब पाँच-छः सौ आदमियोंने अपनी आँखोंसे देखा। उस दिन भादों सुदी पूर्णिमा थी। पूर्णिमाका स्नान करके लौटते हुए स्नानार्थी वहाँ एकत्रित हो गये थे; क्योंकि इस स्थानसे श्रीगङ्गाजी केवल पाच-छः कोस ही हैं। इन परीक्षा लेनेवालोंमें कंजर जातिके पंचोंके अतिरिक्त गंजडुँडवारेके श्रीछत्रसिंह वैद्य, जी०पी० शर्मा रिटायर्ड रेलवे गार्ड, मिश्रीलाल महेश्वरी संवाददाता

कासगंज तथा अन्य सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे।

यह लड़की पूसाराम कंजर गंजडुँडवारावालेकी पुत्री है और सोरोंके कल्लू नामक कंजरको ब्याही है जो खचेराका बेटा है। पाँच साल पहले विवाह हुआ था।

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका और घनश्यामदासजी जालान अभी जब आगरा फीरोजाबाद पर्यटनमें पधारे थे, तब श्रीलोचनरामजी गोविन्दभवनवालोंको इस लड़कीके बारेमें जाँच करनेको कह गये थे। परिणामस्वरूप श्रीलोचनरामजी गोविन्दभवन कलकत्ता और श्रीरामगोपाल पालीवाल, उपाध्यक्ष मंडल कांग्रेस, फीरोजाबाद १७ अक्टूबरको गंजडुँडवारा गये थे। वहाँके कतिपय व्यक्तियोंसे वे मिले और वृत्तान्त सत्य पाया। अवकाशप्राप्त रेलवेगार्ड तथा संवाददाता श्रीमिश्रीलाल महेश्वरीको भी साथ लेकर परीक्षा की। उस स्थानको देखा, उस लड़कीसे मिले तथा उन पंचोंसे भी मिले और समाचारको अक्षरशः सत्य पाया।

(कल्याण वर्ष २८, पृष्ठ १४९७)

******

राम-जपके सम्बन्धमें स्वयंकी अनुभूतियाँ

(लेखक—आचार्य श्रीभगवानदासजी झा, एम०ए०,एल०टी०, साहित्यरत्न)

जीवनके शैशव-कालसे ही मेरे अबोध मनपर मेरे पिताजीकी भक्ति एवं उनके द्वारा निर्देशित राम-नाम-जपकी महत्ताके संस्कार आजतक बनते चले आ रहे हैं। मैं पाँच वर्षका था। मेरे पिताजी चाहते थे कि मैं पढ़ने बैठ जाऊँ। पर मेरा मन पढ़नेसे उसी प्रकार कोसों दूर भागता था, जिस प्रकार किसी संसार-विषयासक्तका भगवन्नामसे। पिताजी बड़े चिन्तित रहते थे। सोचते थे कि इसके भाग्यमें विद्या है ही नहीं। अन्तमें उन्होंने प्रतिदिन इसीके निमित्त 'ॐ' का जप किया। हरि-इच्छासे मेरा मन पढ़नेके लिये व्याकुल होने लगा और बार-बार उचटनेकी स्थितिके बाद भी मैं प्रत्येक कक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुआ, तब मुझे ऐसा भासित होने लगा कि जिस राम-नामने मुझे इतनी विद्या दी, वह इससे आगे भी देगा। अस्तु, घरका त्याग करके मैं हाई-स्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण करने दतिया आ गया।

जीवन क्रम बढ़ता गया और जपकी महिमाका प्रभाव तीव्रतर होता गया। अधिक न कहकर मैं उन घटनाओंको लिपिबद्ध करता हूँ, जो वह स्पष्ट करनेके लिये पर्याप्त है कि ओम् या राम-नाम-जपसे सब विघ्न बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

(२)

बात सन् १९४८ की है। इलाहाबाद नगरसे सम्बन्धित घटना है। मैं गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेजमें एल०टी० का विद्यार्थी था। वार्षिक परीक्षाके दिन निकट थे। कालेजमें प्रथम श्रेणीकी प्राप्तिके लिये भयंकर होड़ें लग रही थीं। अतएव अब सभी विद्यार्थियोंका यही प्रयत्न था कि मैं अबकी प्रथम श्रेणी न प्राप्त कर सकूँ। आठ-दस विद्यार्थी मेरी प्रतियोगिताके क्षेत्रमें कूद पड़े। वे रातों-दिन एक करने लगे। इधर रातके बारह बजेतक पढ़ते और उधर प्रातः चार बजे उठ बैठते। पर मेरी स्थिति भिन्न थी। रातको जगनेकी आदत नहीं थी। नौ बजे सो जाता और प्रातः सात बजे उठता। यह क्रम कई दिनोंतक चलता रहा। सबने समझ लिया कि अब यह विद्यार्थी क्या बराबरी करेगा। पढ़ता तो है नहीं! सोता रहता है। बात सोलह आने सच थी। पर मैं सोनेके पूर्व लगभग पंद्रह मिनटतक संस्कारवश 'ओम्'का जप अवश्य कर लेता और उठनेके साथ ही तुलसीकृत रामायण यह दोहा गुनगुनाने लगता—

भव भेषज रघुनाथ जस सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

परीक्षा हुई और समाप्त हो गयी। जूनमें परीक्षा-फल घोषित हुआ। मैं सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों परीक्षाओंमें प्रथम-प्रथम उत्तीर्ण हुआ। ओम्के जपने मेरी मनःकामना पूर्ण की। संसार इसका रहस्य कदाचित् न समझ सका हो।

(३)

बात सन् १९५२ की है। स्थान जावरा, मध्यभारत था। मैं साइकिलसे स्टेशन लकड़ीकी गाड़ी लेने गया था। साइकिल बहुत पुरानी थी। लकड़ी लेकर चल दिया। मार्गमें मैं संत तुलसीदासका पद—

गाइए गनपति जग बंदन। संकर सुवन भवानी नंदन॥

—गाता हुआ द्रुततम गतिसे बढ़ने लगा। किसीको यह पतातक नहीं कि मेरी साइकिलके आगेके पहियेका चिमटा टूट चुका है; पर मैं बढ़ता ही आया। ठीक घरके द्वारपर आनेपर जैसे ही मैं साइकिलसे नीचे उतरा, पहिया साइकिलसे पृथक् हो गया। मैं बाल-बाल बच गया। मैं सोचने लगा—यदि यही बात जोरोंसे साइकिल चलाते समय घटती तो ग्वालियरकी एक घटनाकी भाँति मैं वक्ष:स्थलके बल भूपर गिरता और सदैवके लिये आँखें बंद हो जातीं। पर गणपतिकी वन्दनाके पदने मेरे जीवनकी रक्षा की। तभी तो श्रीगणपतिजी सकल-विघ्न-विनाशक माने जाते हैं।

(४)

बात सन् १९५५ की है। स्थान नरसिंहगढ़, मध्यभारत था। मैं नगरसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित एक एकान्त बँगलेमें निवास करता हूँ। अचानक दिनाङ्क चार अप्रैल, ५५ को मेरी सबसे छोटी कन्याकी आँखें चढ़ने लगीं। सायंकालके छः बजेका समय होगा। मैं बैडमिंटन खेल रहा था। मेरी धर्मपत्नी चिल्ला पड़ीं। नौकर घरके भीतरसे दौड़ा हुआ आया। कहने लगा—'बेबीकी तबीयत बिगड़ रही है। खेलका मैदान बँगलेके पास ही था। मैं खेल छोड़कर अंदर गया। देखा—छः मासकी बच्ची आँखें चढ़ा गयी है और अन्तिम साँस ले रही है। मैंने सोच लिया कि अब इसके प्राणोंकी रक्षा नहीं की जा सकती। मैं रोने लगा। स्वस्थ बच्चीके हाथोंसे चला जाना कितने दु:खकी बात थी। बच्चीको केवल सायंकाल चार बजे हल्का-सा बुखार आ गया था। दाँत निकलनेकी थोड़ी-सी शिकायत थी। उपचार आदिकी कोई आवश्यकता नहीं समझी गयी। पर जब बच्चीकी दशा बिगड़ने लगी, तब मेरे साथी खिलाड़ियोंने बच्चीको गोदीमें ले लिया और मैं साइकिलसे डाक्टरके पासके लिये दौड़ा।'

(कल्याण वर्ष ३०, पृष्ठ ७५८)

******

संत श्रीखुशालबाबा

(लेखक—पांडुरंग सदाशिव न्हाणपुरे 'कोविद')

खानदेशमें 'फैजपुर' नामक एक नगर है। वहाँ डेढ़ सौ साल पूर्व तुलसीराम भावसार रहते थे। इनकी धर्मपरायणा पत्नीका नाम नाजुकबाई था। इनकी जीविकाका धंधा था कपड़े रँगना। दम्पति बड़े ही धर्मपरायण थे। जीविकामें जो कुछ भी मिलता, उसीमें आनन्दके साथ जीवननिर्वाह करते थे। उसीमेंसे दान-धर्म भी किया जाता था।

इन्हीं पवित्र माता-पिताके यहाँ यथासमय श्रीखुशालबाबाका जन्म हुआ था। बचपनसे ही इनकी चित्तवृत्ति भगवद्भक्तिकी ओर झुक गयी थी। यथाकाल पिताने इनका विवाह भी करा दिया। इनकी साध्वी पत्नीका नाम 'मिसराबाई' था।

दक्षिण 'श्रीक्षेत्र पंढरपुर' बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ आषाढ़ और कार्तिक शुक्ला पूर्णिमाको बड़ा मेला लगता है। वैष्णव भक्त दोनों पूर्णिमाओंको यहाँकी यात्रा करते हैं। उन्हें 'वारकरी' कहते हैं और यात्रा करनेको कहते हैं 'वारी'।

ऐसी ही एक पूर्णिमाको श्रीखुशालबाबा 'वारी' करने पंढरपुर आये। श्रद्धा-भक्तिसे भगवान् विठ्ठलके दर्शन किये और मेला देखने गये। उन्होंने देखा एक दूकानमें श्रीविठ्ठलका बड़ा ही सुन्दर पाषाण-विग्रह है। बाबाके चित्तमें श्रीविठ्ठलनाथके उस पाषाण-विग्रहके प्रति अत्यन्त आकर्षण हो गया। उन्होंने सोचा पूजा-अर्चाके लिये भगवान्‌का ऐसा ही विग्रह चाहिये। उन्होंने उसे खरीदनेका निश्चय किया और दूकानदारसे उस विग्रहका मूल्य पूछा।

दूकानदारने मूल्यके जितने पैसे बताये उतने पैसे बाबाके पास नहीं थे। दूकानदार मूल्य कम करनेपर राजी नहीं था। बाबाको बड़ा ही दुःख हुआ। उन्होंने सोचा—'अवश्य ही मैं पापी हूँ। इसीलिये तो भगवान् मेरे घर आना नहीं चाहते।' वे रो-रोकर प्रार्थना करने लगे—'हे नाथ! आप तो पतितपावन हैं। पापियोंपर आप प्यार करते हैं। बहुत-से पापियोंका आपने उद्धार किया है। फिर मुझ पापीपर हे नाथ! आप क्यों रूठ गये। दया करो मेरे स्वामी! मैं पतित आप पतितपावनकी शरण हूँ।'

बाबाने देखा एक गृहस्थने मुँहमाँगे दाम देकर उस पाषाण-विग्रहको

खरीद लिया है। अब उस विग्रहके मिलनेकी कुछ भी सम्भावना नहीं है। बाबा बहुत ही दुखी हो गये। उस विग्रहके अतिरिक्त उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उनके अन्तश्चक्षुके सामने बार-बार वह विग्रह आने लगा। खाने-पीनेकी सुधि भी वे भूल गये।

रातको कीर्तन सुननेके बाद वह गृहस्थ उस विग्रहको एक गठरीमें बाँधकर और उस गठरीको अपने सिरहाने रखकर सो गया। बाबा भी श्रीविट्ठलका नाम स्मरण करते हुए एक जगह लेट गये।

भगवान् विट्ठलने देखा कि धनिक भक्तकी अपेक्षा खुशालबाबाका चित्त उनमें अधिक आसक्त है। विग्रहके बिना वह दुखी हो रहा है। भक्तके दुःखसे दुखी और सुखसे सुखी होना यह भगवान्‌का स्वभाव है। गीतामें उन्होंने अपने श्रीमुखसे कहा है 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इस विरुदके अनुसार खुशालबाबाके पास जानेका प्रभुने निश्चय किया।

मध्यरात्रि हो गयी। गृहस्थ सो रहा था। भगवान्‌ने लीला करनेकी ठानी, लीलामय जो ठहरे। वे उस गठरीसे अन्तर्धान हो गये और बाबा खुशालके पास आकर उनके सिरहाने टिक गये। कहने लगे—'ओ खुशाल! तेरी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ। देख मैं तेरे पास आ गया।' बाबाने आँखें खोलीं। भगवान्‌को अपने सिरहाने देखकर उन्हें बहुत हर्ष हुआ। वे प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने और संकीर्तन करने लगे।

सुबह वह धनिक भी जागा; उसने अपनी गठरी खोली। देखा तो अंदर श्रीविट्ठलका विग्रह नहीं है। वह चौंक गया। वह उसकी खोजमें निकला। घूमते-घूमते वह बाबाके पास आया। उसने देखा श्रीविग्रह हाथमें लेकर खुशालबाबा नाच रहे हैं। उसने बाबापर चोरीका आरोप लगाया और उनके साथ झगड़ने लगा। बाबाने उसे शान्तिके साथ सारी परिस्थिति समझा दी और वह विग्रह उसे लौटा दिया।

दूसरे दिन रातको भी भगवान्‌ने ठीक वही लीला की और बाबाके पास पहुँच गये। बाबाने फिर विग्रह उसे लौटा दिया।

अब उस गृहस्थने कड़े बंदोबस्तमें उस विग्रहको रख दिया और सो गया। भगवान्‌ने स्वप्नमें उसे आदेश दिया कि 'खुशालबाबा मेरा श्रेष्ठ भक्त है। वह मुझे चाहता है और मैं भी उसे चाहता हूँ। अब आदरके साथ

जाकर मेरा यह विग्रह उसे समर्पण कर दो। इसीमें तुम्हारी भलाई है। हठ करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

बाबा खुशालजी भगवान्के विरहमें रो रहे थे। प्रातःकाल वह धनिक स्वयं उस श्रीविग्रहको लेकर उनके पास पहुँचा और बाबाके चरणोंमें गिर पड़ा। अनुनय-विनयके साथ उसने वह विग्रह बाबाको दे दिया।

बाबा बड़े आनन्दसे फैजपूर लौट आये। उन्होंने बड़े समारोहके साथ उस श्रीविग्रहकी प्राणप्रतिष्ठा की।

प्रातःकाल—ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर बाबा स्नान करते और तीन घंटे भजन-पूजन करते। तदनन्तर जीविकाका धंधा करते। सायंकाल भोजनके बाद भजन-कीर्तन करते। काम करते समय भी उनके मुखसे भगवान्का नाम-स्मरण अखण्ड चला करता था।

भगवान्की कृपासे यथासमय बाबाके एक कन्या हुई थी, कन्या विवाह-योग्य हो गयी। बाबाकी आर्थिक परिस्थिति खराब थी। पासमें धन नहीं था। विवाह करना आवश्यक था। अन्तमें लखमीचंद नामक एक बनियेसे उन्होंने दो सौ रुपये ऋण लेकर कन्याका विवाह कर दिया।

ऋण चुकानेकी अन्तिम तिथि आ गयी। बाबाके पास कौड़ी भी नहीं थी। बनियेका सिपाही बाबाके दरवाजेपर बार-बार आकर तकाजा करने लगा। बाबाने उससे कहा—'मैं कल शामतक पैसेकी व्यवस्था करता हूँ। आप निश्चिन्त रहिये।'

बाबा दूसरे बनियोंके पास गये, किंतु किसीने भी ऋण देना स्वीकार नहीं किया। पड़ोसके एक-दो गाँवों जाकर बाबाने पैसे लानेकी कोशिश की; किंतु नहीं मिले। दूसरे दिनतक पैसे नहीं लौटाये जाते हैं तो बनिया लखमीचंद उनके घरका नीलाम करा देगा। बाबा चिन्ता करते हुए लौट आये।

इधर भक्तवत्सल भगवान्को भक्तकी इज्जतकी चिन्ता हुई। आखिर ऋण तो चुकाना ही था। क्या किया जाय। भगवान्ने दूसरी लीला करनेका निश्चय किया।

भक्तवत्सल भगवान्ने मुनीमका वेष धारण किया। वे उसी वेषमें लखमीचंदके घर गये। उन्होंने सेठजीको पुकारकर कहा, 'ओ सेठजी! ये दो-सौ रुपये गिन लीजिये। मेरे मालिक खुशालबाबाने भेजे हैं। भलीभाँति

गिनकर रसीद दे दीजिये।' लखमीचंदने रकम गिन ली और रसीद लिख दी।

भगवान् रसीद लेकर अन्तर्धान हो गये और बाबाकी पोथीमें वह रसीद उन्होंने रख दी।

दूसरे दिन बाबाने स्नान करके गीताकी पोथी खोली। देखा तो उसमें रसीद रक्खी थी। रसीद देखकर बाबा आश्चर्यचकित हो गये और भगवान्‌को बार-बार धन्यवाद देकर रोने लगे। बाबाने सोचा, जरूर ही वह बनिया पुण्यवान् है। इसीलिये तो भगवान्‌ने उसे दर्शन दिये। मैं अभागा पापी हूँ— द्रव्यका इच्छुक हूँ। इसीसे भगवान्‌ने मुझे दर्शन नहीं दिये। उनके महान् परिताप और अत्यन्त उत्कट इच्छाके कारण भक्तवत्सलने द्वादशीके दिन खुशाल बाबाके सम्मुख प्रकट होकर दर्शन दिये।

उसी गाँवमें लालचंद नामक एक बनिया, जिसे मराठीमें 'वाणी' कहते हैं, रहता था। उसने नित्य-पूजाके लिये भगवान् राम, लक्ष्मण और भगवती सीताके सुन्दर-सुन्दर विग्रह बनवाये। रातमें जब वह सो गया, तब भगवान् श्रीरामचन्द्र स्वप्नमें आये और उन्होंने उसको आज्ञा दी 'लालचंद! हम तुझपर प्रसन्न हैं; किंतु हमारी इच्छा तेरे घरमें रहनेकी नहीं है। हमारा भक्त खुशाल इसी नगरमें रहता है। उसको तू यह सब विग्रह अर्पित कर। जभी तुझे दर्शनकी इच्छा हो तभी वहाँ जाकर दर्शन कर लेना। इसीमें तेरा कल्याण है। मनमानी करेगा तो मैं तुझपर रूठ जाऊँगा।'

सुबह नित्यकर्म करनेके बाद लालचंद बनिया वे सब विग्रह लेकर बाबाके चरणोंमें उपस्थित हुआ। बाबाको स्वप्न निवेदन करके उसने वे सब विग्रह उनको समर्पित किये।

बाबा खुशाल भक्तिप्रेमसे उन विग्रहोंकी पूजा करने लगे। उन्होंने नगरवासियोंके सम्मुख भगवान्‌का मन्दिर बनवानेका प्रस्ताव रक्खा। नगरवासियोंने हर्षके साथ उसे स्वीकार किया और सबके प्रयत्नसे भगवान् श्रीरामका भव्य मन्दिर बन गया। वैदिक पद्धतिसे बड़े समारोहके साथ उन विग्रहोंकी प्रतिष्ठा मन्दिरमें की गयी। आज भी श्रीसंत खुशालबाबाकी भक्तिका परिचय देता हुआ वह मन्दिर खड़ा है।

वृद्धावस्थामें जब बाबाने देखा कि अब अपनी मृत्यु समीप आ गयी है, तब वे संसारकी सारी आसक्ति स्वरूपतः निकालकर अनन्य चित्तसे

भजनानन्दमें निमग्न रहने लगे। कहते हैं, उन्होंने अपना मृत्युकाल निश्चितरूपसे अपने मित्र मनसारामको पहले ही बता दिया था। ठीक उसी दिन कार्तिक शुक्ला चतुर्थी शक १७७२ को भगवान्का नामस्मरण करते हुए बाबा भगवान्की सेवामें सिधार गये।

उनके पुत्रका नाम श्रीहरिबुवा था। वे भी पिताके समान ही बड़े भगवद्भक्त थे। उनके पुत्र रामकृष्ण और रामकृष्णके पुत्र जानकीराम बुवा भी भगवद्भक्त थे।

खुशाल बाबाने काव्यरचना भी की है। 'करुणा-स्तोत्र', 'दत्त-स्तोत्र', 'दशावतारचरित' आदि उनके ग्रन्थ हैं। गुजराती भाषामें लिखे हुए उनके 'गरबो' प्रसिद्ध हैं। आज भी तद्देशीय लोग उन्हें गाते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

(कल्याण वर्ष २९, पृष्ठ ११४०)

******

मोचीमें मनुष्यत्व

एक गरीब भूखे ब्राह्मणने किसी बड़े शहरमें ढाई पहर घर-घर धक्के खाये, परंतु उसे एक मुट्ठी चावल किसीने नहीं दिया। तब वह थक गया और निराश होकर रास्तेके एक किनारे बैठकर अपने भाग्यको कोसने लगा—'हाय! मैं कैसा अभागा हूँ कि इतने धनी शहरमें किसीने एक मुट्ठी चावल देकर मेरे प्राण नहीं बचाये।' इसी समय उसी रास्तेसे एक सौम्यमूर्ति साधु जा रहे थे, उनके कानोंमें ब्राह्मणकी करुण आवाज गयी और उन्होंने पास आकर पूछा—'क्यों भाई, यहाँ बैठे-बैठे तुम क्यों अपनेको कोस रहे हो?' दरिद्र ब्राह्मणने कातर कण्ठसे कहा—'बाबा! मैं बड़ा ही भाग्यहीन हूँ, सुबहसे ढाई पहर दिन चढ़ेतक मैं द्वार-द्वार भटकता रहा, कितने लोगोंके सामने हाथ फैलाया, रोया, गिड़गिड़ाया—परंतु किसीने हाथ उठाकर एक मुट्ठी भीख नहीं दी। बाबा! भूख-प्यासके मारे मेरा शरीर अत्यन्त थक गया है, अब मुझसे चला नहीं जाता। इससे यहाँ बैठा अपने भाग्यपर रो रहा हूँ।'

साधुने हँसकर कहा—'तुमने तो मनुष्यसे भीख माँगी ही नहीं, मनुष्यसे माँगते तो निश्चय ही भीख मिलती।' ब्राह्मणने चकित होकर कहा—'बाबा!

तुम क्या कह रहे हो। मैंने दोनों आँखोंसे अच्छी तरह देखकर ही भीख माँगी है। सभी मनुष्य थे, पर किसीने मेरी कातर पुकार नहीं सुनी।'

साधु बोले—'मनुष्यके दुःखको देखकर जिसका हृदय नहीं पिघलता, वह कभी मनुष्य नहीं है, वह तो मनुष्यदेहधारी पशुमात्र है। तुम यह चश्मा ले जाओ, एक बार इसे आँखोंपर लगाकर भीख माँगो, मनुष्यसे भीख माँगते ही तुम्हारी आशा पूर्ण होगी—तुम्हें मनचाही वस्तु मिलेगी।' साधुने इतना कहकर एक चश्मा दिया और अपना रास्ता लिया।

ब्राह्मणने मन-ही-मन सोचा कि 'यह तो बड़ी आफत है चश्मा लगाये बिना क्या मनुष्य भी नहीं दिखायी देगा? जो कुछ भी हो—साधुके आज्ञानुसार एक बार चश्मा लगाकर घूम तो आऊँ।' यह सोचकर ब्राह्मण चश्मा लगाकर भीखके लिये चला। तब उसे जो दृश्य दिखायी दिया, उसे देखकर तो उसकी बोलती बंद हो गयी और सिरपर हाथ रखकर वह एक बार तो बैठ गया। बिना चश्मेके जिन लोगोंको मनुष्य समझकर ब्राह्मणने भीख माँगी थी, अब चश्मा लगाते ही उनमें किसीका मुँह सियारका दिखायी देने लगा, किसीका कुत्ते या बिल्लीका और किसीका बंदर या बाघ-भालूका-सा। इस प्रकार उस शहरके घर-घरमें घूमकर वह संध्यासे कुछ पहले एक मैदानमें आ पहुँचा। वहाँ उसने देखा—पेड़के नीचे एक मोची फटे जूतेको सी रहा है। चश्मेसे देखनेपर उसका मुख आदमीका-सा दिखायी दिया। उसने कई बार चश्मा उतारकर और लगाकर देखा—ठीक मनुष्य ही नजर आया। तब उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मन-ही-मन सोचने लगा 'मैं ब्राह्मण होकर फटे जूते गाँठनेवाले इस मोचीसे कैसे भीख माँगूँ।' इतनेमें मोचीकी दृष्टि ब्राह्मणपर पड़ी और दृष्टि पड़ते ही उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'महाराजजी! आप बड़े उदास और थके मालूम होते हैं—आपने अभीतक निश्चय ही कुछ खाया नहीं है। मैं अति दीन-हीन और नीच जाति हूँ। मेरी हिम्मत नहीं होती कि मैं आपसे कुछ प्रार्थना करूँ। पर यदि दया करके आप मेरे साथ चलें तो दिनभरमें जूते गाँठकर मैंने जो दो-चार पैसे कमाये हैं, उन्हें मैं पासके ही हलवाईकी दूकानपर दे देता हूँ, आप कृपा करके कुछ जल-पान कर लेंगे तो आपको तनिक स्वस्थ देखकर इस कँगलेके हृदयमें आनन्द समायेगा नहीं।'

ब्राह्मणके प्राण भूख-प्यासके मारे छटपट कर रहे थे। मोचीकी सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण बात उन्होंने तुरंत मान ली। दोनों हलवाईकी दूकानपर पहुँचे। मोचीने अपना बटुआ झड़काया तो उसमेंसे पंद्रह पैसे निकले। मोचीने वे पैसे हलवाईके पास रखकर कहा, 'हलवाई दादा! इन पैसोंसे जितनी आ सके, उतनी मिठाई महाराजजीको तुरंत दे दो, उसे खाकर इनको जरा तो आराम मिले। मैं अभी आता हूँ।'

इतना कहकर परदुःखकातर मोची मुट्ठी बाँधकर घरकी तरफ दौड़ा और उसने मन-ही-मन विचार किया कि 'घरमें जो एक नया जूतेका जोड़ा बनाया रखखा है, उसे अभी बेच दूँ और जितने पैसे मिलें, लाकर तुरंत इन ब्राह्मण महाराजको दे दूँ, तब मेरे मनको चैन पड़े।' वह तुरंत घर पहुँचा और जूतेका जोड़ा लेकर बाजारमें प्रधान चौराहेपर खड़ा हो गया। वहाँके राजा संध्याके समय जब घूमने जाते, तब प्रतिदिन अपनी पसंदका नया जूता खरीद कर पहनते। नित्य नये जूते खरीदकर लानेका काम मन्त्रीजीके जिम्मे था। मन्त्रीने कई जूते ले जाकर राजाको दिखाये, परंतु उनमेंसे कोई भी राजाके पसंद नहीं आया और न किसीका माप ही पैरमें ठीक बैठा। राजाने मन्त्रीको डाँटकर कहा कि 'मैं पाँच सौ रूपये दाम दूँगा। तुम जल्दी मेरी पसंद तथा ठीक मापके जूते लाओ। नहीं तो मैं घूमने नहीं जा सकूँगा और वैसी हालतमें तुमको कठोर दण्ड दिया जायगा।' मन्त्री बेचारे भगवान्‌का नाम लेकर काँपते हुए फिर जूतेकी खोजमें निकले और चौराहेपर पहुँचते ही एक मोचीको सुन्दर नये जूते लिये खड़े देखा। जूते लेकर तुरंत मन्त्रीजी राजाके पास पहुँचे। मोचीको भी वे साथ ले आये थे। भगवान्‌की कृपासे यह जूता-जोड़ा राजाको बहुत ही पसंद आया और पैरोंमें तो ऐसा ठीक बैठा मानो पैरोंके माप देकर ही बनाया गया हो। राजाने प्रसन्न होकर मोचीको पाँच सौ रुपये जूतेका मूल्य और पाँच सौ रुपये इनाम—कुल हजार रुपये देनेका आदेश दिया। मोचीने आनन्दविह्वल होकर गद्गद स्वरोंमें कहा—'सरकार! जरा ठहरनेकी आज्ञा हो, मैं अभी आता हूँ, ये रुपये जिनको मिलने हैं, उनको मैं तुरंत ले आता हूँ, सरकार! उन्हींके हाथमें रुपये दिला दीजियेगा।'

मोचीकी यह बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ और राजाने पूछा—'ये जूते तो तुम्हारे अपने हाथके बनाये हैं, फिर तुम इनके दाम

दूसरेको कैसे दिलवाना चाहते हो?'

'सरकार! मैंने इन जूतोंके दाम गरीब ब्राह्मणको देनेका संकल्प मनमें कर लिया था। तब मैं इनका मूल्य कैसे लेता? पूर्व जन्मोंके कितने पापोंके फलस्वरूप तो मुझे यह नीच कुलमें जन्म और नीच जीविका मिली है, फिर इस जन्ममें ब्राह्मणका हक छीन लूँगा तब तो नरकमें भी मुझे जगह नहीं मिलेगी।' इतना कहकर मोची दौड़कर हलवाईकी दूकानपर पहुँचा और हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे बोला—'महराजजी! दया करके एक बार मेरे साथ राजमहलमें चलिये।' ब्राह्मण उसके आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे आकर्षित होकर मन्त्रमुग्धकी तरह उसके पीछे चल पड़ा और राजाके सामने जा पहुँचा। तब मोचीने राजासे कहा—'सरकार! इन्हीं ब्राह्मण देवताको जूतेका मूल्य दिलवानेका आदेश दिया जाय।' राजाने मन्त्रीको एक हजार रुपये ब्राह्मणको देनेकी आज्ञा दी और विस्मय तथा कौतूहलपूर्ण हृदयसे ब्राह्मणसे पूछा—'पण्डितजी! हमारी राजधानीमें इतने धनी-मानी लोगोंके होते हुए आपने इस मोचीसे भीख क्यों माँगी?' तब सरलहृदय ब्राह्मणने सारा प्रसङ्ग सुनाकर चश्मा दिखलाया और राजासे कहा कि 'आप स्वयं चश्मा लगाकर सत्यकी परीक्षा कर लें।' राजाने चश्मा लगाकर सबसे पहले मन्त्रीके मुँहकी ओर देखा तो वह सियार दिखायी दिया। चारों तरफ देखा—कोई कुत्ता, कोई बिल्ली, कोई बंदर, कोई बकरी, कोई भेड़, कोई गधा और कोई बैल दिखायी दिया। चश्मा उतारकर देखा तो सभी मनुष्य दीख पड़े। तब राजाने अत्यन्त विस्मित होकर चश्मा मन्त्रीको दिया और कहा—'देखो मन्त्रीजी! चारों ओर पशु-ही-पशु दिखायी देते हैं, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है।' तब मन्त्रीने चश्मा लगाकर राजके मुखकी ओर देखा तो एक बड़ा बाघ दीख पड़ा और चारों ओर दरबारी लोग भाँति-भाँतिके जानवर दीखे। तब राजाने एक दर्पण मँगाकर चश्मा लगाकर अपना मुँह देखा और यों सभीको अपना-अपना मुँह दिखलाया। परंतु चश्मा लगानेपर भी सभी लोगोंको मोचीका मुँह आदमीका-सा ही दिखायी दिया। तब राजाने मोचीके चरणोंमें गिरकर कहा—'आजसे यह राज्य तुम्हारा हुआ; मैं राज्य, धन, ऐश्वर्य नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—केवल तुम्हारे-जैसा उच्च और विशाल हृदय। मनुष्यका शरीर धारण करके यदि मनुष्यका-सा हृदय नहीं हुआ तो मनुष्यकी मूर्तिका क्या

मूल्य है? मानव-जन्मकी क्या सार्थकता है?'

मोचीने कहा—'सरकार! आप जो कुछ देना चाहते हों, इन ब्राह्मण देवताको दीजिये। मैं दीन-हीन कंगाल राज्य लेकर क्या करूँगा।' वह दरिद्र ब्राह्मण सोचने लगा—'पता नहीं, मेरी कितने जन्मोंकी तपस्या है, जिसके फलस्वरूप आज इस मोचीरूपधारी विशाल-हृदय महाप्राण पुरुषके दर्शन और कृपा प्राप्त करनेका मुझे सौभाग्य मिला है।' यों विचारकर कृतज्ञ-हृदयसे उसके चरणोंमें प्रणत होकर ब्राह्मणने कहा—'भाई मोची! मैं न तो राज्य चाहता हूँ और न देवत्व, न ब्रह्मत्व या समस्त विश्वका आधिपत्य ही चाहता हूँ। मैं तो चाहता हूँ तुम्हारे-जैसा मनुष्यत्व।'

मोचीको भावावेश हो गया और वह आकुल-हृदयसे भगवान्‌के चरण-कमलोंका मधुर स्मरण करके अश्रुपूर्ण लोचन और प्रेमसे गद्गद कण्ठ होकर कहने लगा—'मेरे अनन्त करुणामय प्रभो! धन्य तुम्हारी करुणाको! मैंने केवल तुच्छ एक जोड़े जूतेका मूल्य ब्राह्मणको देनेका संकल्प किया था, इसीसे तुम मुझको इतना बढ़ा रहे हो, तुम्हारे चरणोंमें शरीर, मन, प्राण, सर्वस्व समर्पण करके जगत्‌की सेवा कर सकनेपर तो, तुम पता नहीं, कितना प्यार करते हो।'

यह कहकर मोची आँखोंसे आनन्दाश्रुकी वर्षा करता हुआ वहाँसे चुपचाप चल दिया। राजा और ब्राह्मण चकित-दृष्टिसे उसकी ओर देखते रह गये।

(कल्याण वर्ष २९, पृष्ठ १३०२)

******

परदु:खकातर भक्त रामलोचन

गङ्गाजीके किनारे एक छोटा-सा गाँव था, गाँवमें आठ-नौ सौ घरोंकी बस्ती थी। अधिकांश घर क्षत्रियोंके और कुछ अहीरोंके थे। पाँच-सात ब्राह्मण गृहस्थ भी रहते थे। सबमें परस्पर बहुत प्रेम था। सभी एक-दूसरेके सुख-दु:खमें साथी थे। ब्राह्मण सभी सदाचारी तथा पढ़े-लिखे थे। पुरोहिती उनकी आजीविकाका साधन था। ब्राह्मणोंमें एकका नाम था रामलोचन। पण्डित रामलोचनजीकी उम्र लगभग ३५-४० सालकी थी। घरमें बूढ़े माता-पिता, एक छोटा भाई तथा साध्वी पत्नी थी। छोटा-सा परिवार बड़ा सुखी था।

सुखका प्रधान कारण था सादा जीवन, बहुत ही सीमित आवश्यकता, आस्तिकता और सेवाभाव। दोनों पति-पत्नी, पिता-माताकी सेवामें लगे रहते। हर तरहसे उन्हें सुख पहुँचाना और उनकी आज्ञाका पालन करना दोनोंने अपना स्वभाव बना लिया था। रामलोचनजीने पुराणों तथा महाभारतका अध्ययन किया था। वे कर्मकाण्डके भी पण्डित थे। दूर-दूरतकके यजमानोंके यहाँ कथा कहने तथा जन्म-विवाह आदि संस्कार कराने आया करते थे। वे कोरे पण्डित ही नहीं थे, भगवान्‌के भक्त थे और भगवान्‌के नामका जप तथा स्मरण करते हुए ही सारे काम करते थे।

पण्डित रामलोचनजीने अपने सद्व्यवहार तथा सेवासे गाँवमें सबको अपना बना लिया था। कहीं किसीके भी कोई बीमारी होती, कोई संकट होता, वे बिना ही बुलाये पहुँच जाते और बिना किसी भेदभावसे सबकी सेवा करते तथा उनका कष्ट दूर करनेका प्राणप्रणसे प्रयत्न करते—मानो वह कष्ट उन्हींपर आ गया हो। अड़ोस-पड़ोसके दो एक ब्राह्मण रामलोचनजीकी इस नीतिका विरोध करते तो वे कह देते—'भाई! मैं किसीका उपकार थोड़े ही करता हूँ, मैं तो बड़ाईका भूखा हूँ, लोग मेरी बड़ाई करते हैं तो मुझे सुख मिलता है, बस, इसीसे लोगोंके घर चला जाता हूँ और उनका कोई ऊपरका काम होता है तो उन्हें दिखानेके लिये उसे कर देता हूँ।' ब्राह्मण जरा तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर चुप हो जाते। पण्डित रामलोचनजी कुछ दवा-टोटका भी जानते थे, गाँवमें तो उनको लोग बड़ा अच्छा वैद्य मानते थे। निःस्वार्थभावसे दवा देते; बुद्धिका निर्णय ठीक होता, रोगपर ठीक दवा लगती इससे सहज ही रोग अच्छा हो जाता। सारी बुराई तो बुद्धिके विपरीत निर्णयसे होती है। बुद्धि यदि सभी जगह ठीक निर्णय कर सकती है तो फिर मनुष्यके द्वारा जो कुछ कार्य होते हैं, सभीमें वह सफल होता है।

एक दिनकी बात है, वे अहीरोंकी टोलीमें एक बुढ़िया माईको देखने गये थे। उसे बुखार आ गया था। दवा दी, फिर उसे रामायणकी बातें सुनाने लगे। बुढ़ियाके कोई नहीं था; वे उससे कहते—'माँजी! मुझे तुम अपना बेटा ही मानो। क्या हुआ जो तुम्हारे पेटसे नहीं पैदा हुआ। मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम मेरी माँ हो।' पण्डितजी बुढ़िया माईके पैर दबाने लगते। उसके लिये घरसे पथ्य बनाकर ले जाते। पानी भर

देते। बुढ़िया सचमुच उन्हें पुत्रवत् प्यार करती थी। वे गाँवभरमें मानो सभी वृद्धा स्त्रियोंके पुत्र, समवयस्काओंके भाई तथा छोटी उम्रवालोंके पिता थे।

बुढ़ियाके घरसे निकलकर वे एक छोटी गलीसे जाने लगे। कोनेपर ही एक घर था। रामलोचनजीको एक स्त्रीके कुछ रोनेकी-सी आवाज सुनायी दी। फिर दूसरे ही क्षण उन्हें ऐसा लगा, मानो एक दूसरा आदमी किसीको डाँट रहा है। अकस्मात् किसीके घरमें जाना अनुचित समझकर वे घरके दरवाजेके पास जाकर खड़े हो गये—केवल उनका दु:ख-दर्द जाननेकी इच्छासे। वह एक अहीरका घर था। उन्हें सुनायी दिया—

'मैंने बहुत छिपाया। मैं जान गयी थी कि मैं महापापिन हूँ, तभी तो मुझ अभागिनीको यह महारोग हुआ। मैं नहीं चाहती थी कि इसका किसीको पता लगे—पर मैं सदा ही अलग रहनेकी चेष्टा करती थी कि मुझ अपराधिनीका रोग किसीको लग न जाय। उस दिन इसी अलग रहनेकी कोशिशमें ही मेरा यह पाप प्रकट हो गया। मैं तो खुद ही किसीको छूना नहीं चाहती। पर तुम मुझपर इतने नाराज क्यों हो रहे हो? तुम कहो सो करूँ। तुम मेरा मुँह नहीं देखना चाहते—अच्छी बात है, मत देखो; तुम कहो तो मैं अफीम खालूँ। और क्या करूँ। बताओ मेरा क्या उपाय है? इस रोगसे मैं सुखी थोड़े ही हूँ।'

'बस यह सब मैं सुनना नहीं चाहता, मैं तो यही पूछने आया हूँ कि तुम अपने पीहर कब जाती हो। अब तुम्हें यहाँ रखकर मैं बदनाम होना नहीं चाहता और न तुम्हारे संसर्गमें रहकर मैं अपनी कञ्चन-सी कायाको ही बिगाड़ना चाहता हूँ।'

'पीहरमें किसके पास जाऊँ—माँ तो मर गयी। भाई-भौजाईके पास एक बार गयी थी। तुमको पता ही है, उन्होंने तिरस्कार करके निकाल दिया। अब वहाँ कैसे जाऊँ। जब तुम पति होकर ही मुझे निकालना चाहते हो, मेरा मुँह देखना नहीं चाहते तब दूसरा कौन मुझे रक्खेगा। मुझे वे दिन याद हैं—जब तुम मुझे रानी कहकर पुकारा करते थे। मुझे जरा-सी उदास देखकर सहम जाते और हँसानेकी चेष्टा करते थे। मुझसे इतना प्रेम दिखाते थे, मानो मेरा एक क्षणका बिछोह भी तुम नहीं सह सकते। मालूम होता है कि वह सब तुम्हारा दम्भ था। नहीं-नहीं, वह सब इसीलिये

करते थे कि यह शरीर तुम्हारे भोग भोगनेका साधन था। तुम्हारी नीच भोग-वासनाकी पूर्तिका एक आधार था। संसारके एक मनुष्यके नाते तुम्हारा प्रेम नहीं था। हाय-हाय! मनुष्य कितना स्वार्थी है। अच्छी बात है, मैं जाती हूँ—सदाके लिये जाती हूँ। मैंने तुम्हें अपना पति माना है, सदाके लिये माना है। मैं तुम्हारा बुरा देख तो सकती ही नहीं, क्षण भरके लिये भी तुम्हारा बुरा नहीं चाहती। तुम सुखी रहो, तुम्हारी कंचन-सी काया सुखी रहे। तुम फूलो-फलो।' यों कहकर रोने लगी और घरसे बाहर निकली। दरवाजेके पास तो रामलोचनजी खड़े ही थे। उनका परदुःखकातर हृदय द्रवित हो गया था। उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। संत भक्त अपने दुःखको केवल वज्र-हृदय होकर सहते ही नहीं हैं, दुःखको भी सुखके समान ही समझते हैं—'समदुःखसुखः' परंतु दूसरेके जरासे दुःखसे भी द्रवित हो जाते हैं, उसे सह नहीं पाते और अपना सारा सुख समर्पण करके उसके दुःखका नाश करनेमें लग जाते हैं। इसीमें उनको सुख मिलता है। संत-भक्त दुखीका दुःख निवारण करके उसका कोई उपकार नहीं करते। दुःख निवारण करनेमें ही उनको सुख मिलता है और वे अपने सुखके लिये ही दूसरेके दुःखको सादर सिर चढ़ाया करते हैं।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

तुलसीदासजीने यह बहुत ठीक कहा है। अस्तु! अहीरिनने बाहर निकलते ही रामलोचनको देखा—वह सकुचाकर एक ओर हो गयी। रामलोचनजीने अपनी आँखें पोंछी और कहा—'बेटी! तुम घबराओ नहीं, मेरे पास तुम्हारे रोगकी कीमिया रामबाण दवा है। तुम मेरे साथ चलो। भगवान् तुम्हें निरोग करेंगे। इतनेमें अहीर बाहर निकल आया। वह बहुत ही लजाया और उसने रामलोचनजीको हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा—'महाराजजी! कोई बात नहीं है, पर यह रोग बड़ा खराब है। इसे यहीं रहने दीजिये। जैसे-तैसे कोई उपाय करूँगा। आप इसे ले जाकर व्यर्थ क्यों पीड़ा मोल लेते हैं।'

पण्डितजी बोले—'भाई गजरू! इसे साथ ले जानेपर मुझे कोई पीड़ा नहीं होगी। मैं इस रोगकी दवा जानता हूँ, उससे इसकी पीड़ा शान्त हो जायगी। मैं तो दवा करनेके लिये ही ले जा रहा हूँ। तुम कोई संकोच मत करो।'

पण्डितजीने ऐसे ढंगसे बातें कहीं मानो उन्होंने उन लोगोंकी बातें सुनी ही नहीं थीं। गजरूने समझा कि ये दवा करनेके लिये ही ले जा रहे हैं। मैंने इसके साथ जो दुर्व्यवहार किया है, उनका इन्हें पता नहीं है। वह मनसे तो चाहता ही था कि यह चली जाय और उसे अपनी घरवालीपर यह दृढ़ विश्वास था कि कुछ भी हो जाय, यह मेरी बुराई दूसरेके सामने करेगी ही नहीं। उसने कहा—'महाराजजी! जब ऐसी कीमिया दवा आपके पास है, तब इसे जरूर ले जाइये। मैं भी खबर लेता रहूँगा।' फिर पत्नीसे कहा—'अरी! ये हमलोगोंके पिता-तुल्य हैं, इनके घरको अपना ही घर समझना। ये तुम्हें बड़े प्यारसे रक्खेंगे और दवा करेंगे। दूसरा कोई होता तो मैं उसके साथ तुमको नहीं भेजता, पर पण्डितजी तो घरसे भी बढ़कर तुम्हें आदरके साथ रक्खेंगे।' गजरूने, पत्नीके प्रति उसका ममत्व तथा सहानुभूति है—यह दिखानेके लिये यों कहा। पर बात सत्य थी। पण्डितजी अवश्य ही उसे अपनी पुत्री समझेंगे और बड़े आदरके साथ उसे रक्खेंगे। गजरूकी स्त्री ईसरी कुछ सोच नहीं सकी। उसे बड़ा आश्वासन मिला और वह पण्डितजीके साथ चली गयी। गजरूने भी सुखकी साँस ली।

पण्डित रामलोचनजी अहीरिन ईसरीको साथ लेकर घर पहुँचे। उसके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ गिर गयी थीं। पीठमें कई घाव थे। बदनपर फफोले थे और कई जगह तो खून तथा पीब चू रहा था। उसने संकोचवश रोगको छिपाये रक्खा था। वह अंदर-ही-अंदर बढ़ता गया और अन्तमें इस दशाको पहुँच गया।

रामलोचनजीने ईसरीको दालानमें बैठा दिया और जाकर माता-पितासे सब समाचार सुनाये। पत्नीको भी सब सुनाया। माता-पिता बड़े प्रसन्न हुए। क्यों न होते—जिन्होंने रामलोचन-सरीखा परदुःखकातर पुत्र उत्पन्न किया। पत्नीको भी पतिके इस निश्चयसे बड़ा सुख मिला।

पिताने कहा—'बेटा! भगवान् तेरा मङ्गल करें। जो दूसरेके दुःखको अपना दुःख बना लेता है, वही सच्चा मनुष्य है। बेटा! तुम जब उस लड़कीको लाये हो तो मन लगाकर उसकी सेवा करना। कहीं घबराना, उकताना नहीं। जरा भी घृणा नहीं करना। उसे यह न लगे कि उसकी यहाँ उपेक्षा हो रही है और उससे लोग घृणा करते हैं। शरीर तो व्याधि-मन्दिर है।

शरीरके बाहर दिखायी देनेवाले सब रोग प्रत्येक शरीरके अंदर समाये हुए हैं। मनुष्यके रोम-रोममें रोग है। किसीके भीतर है तो किसीके बाहर। इसलिये भूलकर भी घृणा मत करना। हमें तो रोगीके रोगको उतारकर उसे स्वयं धारण करना है। जो दूसरोंकी दुर्गन्ध को सुगन्ध बनाना चाहेंगे, उन्हें उसकी दुर्गन्धको स्वयं लेकर अपनेमें ही रख लेना पड़ेगा। तभी उसकी दुर्गन्धको सुगन्ध बनाया जा सकेगा। फिर बेटा! हमारे पास तो एक बहुत कीमिया दवा है—रामनाम। रामनाम सब रोगोंकी एक ही रामबाण दवा है। तुम खुद इसका सेवन करते ही हो और रामनामका कीर्तन करते हुए ही उस पुत्रीके घावोंको साफ करो, दवा लगाओ और उसको भी रामनामकी दवा सेवन करनेका उपदेश दो।'

माताने भी दृढ़ विश्वासपूर्वक कहा—बेटा! भगवान्‌के राज्यमें भला करनेवालेका परिणाममें कभी बुरा हो नहीं सकता। तुम आजसे व्रत ले लो कि ऐसे अपमानित तिरस्कृत रोगियोंको भगवान्‌का स्वरूप समझोगे और आदरपूर्वक उन्हें अपने घर लाकर उनकी सेवा करोगे। तुम्हारा घर ऐसे असहाय विपन्न प्राणियोंके लिये माँका घर बन जाय। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।

ब्राह्मणपत्नीने भी मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए संकेतसे अपने सास-ससुरकी बातोंका समर्थन किया। ईसरी बड़े आदर के साथ घरमें रक्खी गयी। 'बिपति काल कर सत गुन नेहा।' इस सिद्धान्तके अनुसार रामलोचनजी और उनकी पत्नी उसके साथ विशेष आत्मीयताका बर्ताव करते थे। रामलोचनजी—जैसे पिता अपनी पुत्रीके घाव धोता है, ऐसे ही शुद्ध हृदयसे उसके घाव धोते। खून पोंछते। उनपर चावलमोगरेका तेल लगाते, एक साधुकी बतायी हुई दवा खानेको देते। उनमें भगवद्भाव तो था ही, अतः वे इसे भगवान्‌की पूजा समझते।

एक दिन वे ईसरीके घाव धो रहे थे, उसे यह मालूम था कि उसका रोग दूसरोंके लगनेवाला है। पण्डितजीके घरमें उसका सगी लड़कीसे अधिक आदर था। वह पण्डितजीके उपकारसे दबी थी। उसके मनमें आया, कहीं मेरे सड़े घाव धोते-धोते पण्डितजीको यह महारोग हो गया तो मेरा कितना बड़ा पाप होगा वह। वह सिहर उठी। उसकी आँखोंमें आँसुओंकी धारा बह चली। उसने सिसकियाँ भरते हुए कहा—'पिताजी! कहीं आपके

इस फूल-सरीखे पवित्र शरीरको कुछ हो गया तो?' पण्डितजीने कहा—'बेटी! तेरा शरीर भी तो एक दिन बड़ा सुन्दर था। तेरे पति तेरे शरीरके सौन्दर्यपर मुग्ध थे और अपनेको बड़ा भाग्यशाली मानते थे, आज उसकी क्या दशा है। बस, यही स्थिति शरीरमात्रकी है। जवानी और नीरोगताका नशा कब उतर जायगा—यह कौन जानता है? मानव-शरीरके रोम-रोममें रोग भरे हैं, मैं उनको कहाँ तक दबाये रक्खूँगा। बेटी! तू स्त्री है, मैं मन-ही-मन सोचा करता हूँ कि स्त्रीका शरीर प्रसव आदिके समय कितनी और कैसी-कैसी नरकयन्त्रणा सहन करता है। पुरुष अपनेको बड़ा मानकर स्त्रीकी उपेक्षा करता है, उसे केवल अपने सुखका साधन मात्र मानकर उसके दुःखको कभी-कभी अपना सुख बना लेता है, यह उसका बड़ा पाप है। मैं पुरुष जब तुम्हारे घाव धोता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि अपनी पुरुषजातिके पाप धो रहा हूँ। तू जरा भी घबरा मत। रामनामको कभी मत भूल। यह सब रोगोंकी अचूक दवा है। देख, तेरे घाव पहलेसे आधे रह गये हैं।' ईसरीको रामलोचनजीके शब्दोंसे बड़ा आश्वासन मिला। वह बोली—'पिताजी! पिताजी! आप धन्य हैं। मेरे तो रोम-रोममें आपके उपकार भरे हैं। पर मैं फिर भी, आपसे प्रार्थना करती हूँ, आपको शरीरका कुछ ध्यान रखना चाहिये। आपका शरीर बहुमूल्य है और मुझ-सरीखे असहाय प्राणियोंका सहारा है। आपका शरीर रहेगा तो बहुतोंका भला होगा।'

रामलोचनजी हँसकर बोले—'बेटी! भला करनेवाले तो एकमात्र भगवान् हैं और वही सबके एकमात्र सहारा हैं। हम सरीखे मनुष्य तो अभिमान करके अपनेको उपकारी मान बैठते हैं। रही शरीरकी बात, सो शरीर तो सड़नेवाला और नाश होनेवाला है ही। मैंने सोचा, शरीरसे कुछ काम लेना चाहिये। तब मैंने इस अभागेसे कहा—'आखिर तो तुझे जलती चितामें पड़कर खाक होना ही है, फिर किसीके काममें आकर ही जल!' बस इसीलिये, इस शरीरका भाग्योदय करनेके लिये ही इससे कुछ काम लेनेकी मैंने व्यवस्था की है। इसमें न तो कोई उपकारकी बात है, न कोई महत्त्व ही है।

धीरे-धीरे ईसरी अच्छी हो गयी। पर रामलोचनजीको तो अब लालच लग गया। उन्होंने इसी बीचमें ऐसे ही आठ नर-नारियोंका और संग्रह कर लिया, जिनके शरीर सड़ रहे थे। इनका घर मानो अच्छा-सा कुष्ठाश्रम बन

गया। पण्डितजीकी पुरोहिताई छूट गयी। अब तो बस, इनके यही काम रह गया—दिन-रात भगवान्‌का नाम-स्मरण करते हुए नारायणरूप कुष्ठ रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करना। इसी बीचमें नब्बे वर्षकी उम्रमें निरन्तर भजनमें लगे हुए पिताजीका देहान्त हो गया। मरते समय वे भगवान्‌का ध्यान कर रहे थे। अकस्मात् ब्रह्म-कपाल फट गया। माताजी उन्हींके साथ सती हो गयीं। घरके कामको छोटे भाईने सँभाल लिया। उसने विवाह नहीं किया था। वह अपने भाई-भौजाईके इस सेवाकार्यसे बहुत प्रसन्न था और ऐसे महात्माके छोटे भाई बननेका उसे भगवान्‌ने अवसर दिया। इसे वह अपना सौभाग्य मानता था। वह ब्राह्मणोचित शुद्ध-कर्म करके जो कुछ कमाता, भाई-भौजाईके चरणोंपर लाकर रख देता। उसीसे सबका भोजन-छाजन चलता। ब्राह्मणी घरवालोंके लिये स्नान-भोजनादिकी व्यवस्थामें लगी रहती। रोगी अच्छे होकर घर जाते तो नये आ जाते। दिन-रात भगवत्-स्मरण होता रहता। नियमित कीर्तन-भजन होता। सबने रामनामका और रामलोचनजीकी निष्काम शुद्ध सेवाका चमत्कार देखा। रोगी आते बड़ी दुरवस्थामें, और शीघ्र ही—रामलोचनजीके हाथोंसे घाव धुलते और ब्राह्मणीके हाथका परसा हुआ अमृत-भोजन करते ही वे अच्छे होने लगते। फिर दृढ़ विश्वाससे समन्वित 'सर्वतापशमनैकभेषज' रामनामका सतत स्मरण होने लगनेपर तो रोग रहता ही नहीं।

यों, उस युगमें, जब कुष्ठके नामसे लोग डरते थे, रामलोचनजीके द्वारा सैकड़ों दु:साध्य-रोगी रोगमुक्त हुए। केवल शारीरिक रोगसे ही नहीं, कठिनतम भवरोगसे भी वे सहज ही छूट गये। अबतक वहाँ रामलोचनजीकी समाधिकी पूजा होती है और उनके नामसे कोढ़ियोंको रोगमुक्तिमें सहायता मिलती है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

(कल्याण वर्ष २८, पृष्ठ ९८०)

******

एक सच्चा सफल व्यापारी श्रीगंडाराम भावड़ा

[लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर]

ऐसा कहा जाता है कि पिछले महायुद्धमें ईमानदारीपर सबसे पहली गोली लगी थी और वह मर गयी। व्यापारी-समाजकी जितनी आध्यात्मिक अधोगति पिछले दस-बारह वर्षोंमें हुई है यह सभीको विदित है। प्राय: यह कहा जाता है कि सत्य और नियमसे व्यापार नहीं चल सकता। पर यह युक्ति केवल मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलताकी द्योतक है और सत्यनिष्ठाके सर्वथा विपरीत है। यह बात एक साधारण परंतु सत्यनिष्ठ सज्जनके जीवनसे व्यक्त होती है, जिनको स्वर्गलोक सिधारे लगभग बीस-पच्चीस वर्ष हुए होंगे।

पंजाबके कपूरथला राज्यान्तर्गत सुलतानपुर नामक छोटा-सा नगर है, वहाँ श्रीगंडाराम भावड़ा निवास करते थे (पंजाबमें जैनी सज्जनोंको भावड़ा कहते हैं)। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत हीन थी और कोई पचास वर्ष पूर्व इन्होंने तीन-चार सौ रुपयेकी पूँजीसे बाजारसे हटकर एक गलीमें कपड़ेकी परचूरन दूकान खोली थी। इन्होंने अपने कारोबारके निम्नलिखित नियम बनाये थे, जिनका दृढ़तापूर्वक आजीवन पालन किया—

(१) दूकानपर ठीक दस बजे दिनको आना और सायंकाल पाँच बजे दूकान बंद कर देना।

(२) सूती कपड़ेपर एक आना रुपया और रेशमी तथा ऊनीपर डेढ़ अथवा दो आना प्रति रुपयासे अधिक मुनाफा नहीं लेना।

(३) सबके लिये एक कपड़ेका एक ही भाव रखना, चाहे खरीदनेवाला कोई भी हो।

(४) जो भाव कहना, उससे न्यूनाधिक कभी न करना।

पहले एक दो वर्ष तो इनके बड़े कष्टसे निकले; क्योंकि ग्राहकोंको विश्वास ही नहीं होता था कि इनका नियम-पालन केवल दिखावा है या सच्ची दृढ़ निष्ठा है। परंतु जब ग्राहकोंने बार-बार परीक्षा करके देख लिया कि यहाँ सभी कार्य सत्यकी अडिग शिलापर स्थित हैं तो इनका व्यापार इतना बढ़ा कि इनके लिये सँभालना कठिन हो गया। इनका नौकर करीमबख्श

प्रतिदिन साढ़े नौ बजे दूकान खोलता और झाड़-बुहारके पश्चात् जो ग्राहक पहले आया हो, उसको पहले तथा पीछेवालेको पीछे—जो जिस क्रममें आये हों, उनको उसी क्रमसे बैठा देता और ठीक दस बजे वे दूकानके भीतर घुसते। एक दो मिनट पहले आते तो बाहर ही खड़े रहते, जबतक कि दूकानकी घड़ी दसकी घंटी न बजा देती। उधर साढ़े चार बजे ही विक्रय बंद कर देते और पाँच बजे दूकानको ताला लगा देते, चाहे कोई ग्राहक कितना ही लोभ दे और अनुरोध करे, पर वे नियमसे विचलित नहीं होते और विनयपूर्वक कहते कि 'भाईजी, यदि मेरी दूकानसे और सामान लेना है तो कृपापूर्वक कल आ जायँ, नहीं तो बाजारमें बहुत दूकानें हैं उनसे ले सकते हैं।'

चाहे कोई इनका कितना ही मित्र हो, चाहे कोई अबोध ग्रामीण स्त्री हो, ये सबको एक वस्तु एक ही भाव देते। मित्रोंको आवश्यकता पड़नेपर कह देते कि भाव तो यही रहेगा, परंतु यदि आप चाहें तो वैसे ही ले जायँ; क्योंकि आप मेरे मित्र हैं। और बिना मूल्य दे भी देते। बालक और ग्रामीण स्त्रियोंको भी वस्तु ठीक उसी भावपर मिलती, जिसपर किसी कुशल व्यापारीको मिलती। फल यह हुआ कि इनकी दूकानपर सदा ही भीड़ लगी रहती और विवाहोंकी ऋतुमें बहुत लोगोंको हताश ही होना पड़ता।

प्रायः देखा जाता है कि धर्मकी कमाई शुभ कर्मोंमें व्यय होती है और इस कमाईके खानेवाले भी सच्चरित्र निष्ठावान् और सुखी होते हैं। इन्होंने अपनी कमाईका एक निश्चित अंश धर्मोपयोगी कार्यों तथा परोपकारमें व्यय किया और मृत्युके समय लाखोंकी सम्पत्ति अपने वंशजोंके लिये छोड़ गये। परंतु इन सबसे मूल्यवान् तो इनका सच्चा यश और दूकानकी ख्याति थी, जिसका लाभ इनके वंशजोंको अभीतक प्राप्त होता रहता है।

(कल्याण वर्ष २७, पृष्ठ ११९७)

****

माताकी कृपा

(प्रेषक—श्रीसागरमलजी शर्मा*)

रियासत जोधपुरमें, परगना जालोरमें एक आकरा नाम चाँपावत राठोड़ोंका ठिकाना है, वहाँ ठाकुर श्रीधोकलसिंहजी बड़े भक्त थे। उनके एक भतीजे हैं, जिनका नाम मुकनसिंहजी है। ये उन ठाकुर साहबके संगसे बचपनसे ही दुर्गाजीकी पूजा-पाठ वगैरह खेल-ही-खेलमें किया करते थे। इनके ये संस्कार गाढ़े पड़ गये और ये दुर्गाजीकी भक्ति करने लगे।

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। इन ठाकुर श्रीमुकनसिंहजीको गुर्देकी तकलीफ हो गयी। इनको जोधपुर लाकर बहुत-से डाक्टर-वैद्योंका करीब छः महीने इलाज कराया गया। बीमारी ठीक नहीं हुई वरं बढ़ती ही गयी और इनके गुर्देके पास पेटके अंदर एक गाँठ हो गयी। एक्स-रे करानेपर पता लगा कि गाँठ करीब तीन-चार सेरकी होगी। अब तो इनका शरीर भी बहुत दुर्बल हो गया था। सिर्फ हड्डीका ढाँचामात्र रह गया था। केवल पेट-ही-पेट फूला हुआ दीखता था। कमजोरी इतनी थी कि करवट भी दूसरे ही आदमी बदलाते थे। इसी विकट स्थितिमें भी इन्होंने अपनी माताका जप-साधन नहीं छोड़ा। ये प्रार्थना करते थे कि 'हे मा! जो कुछ तेरी इच्छा है, वही कर, परंतु मुझे सहनशक्ति दे। अब मुझसे यह बीमारी सही नहीं जाती।'

एक दिन इसी तरह गुनगुनाते-गुनगुनाते और माताजीसे प्रार्थना करते-करते इन्हें नींद आ गयी। नींदमें इनको स्वप्न हुआ। इन्होंने देखा कि ये उत्तर दिशाकी ओर जा रहे हैं। वहाँ इनको एक खपरैलका छाया हुआ घर दिखायी दिया। ये उसमें घुस गये। वहाँ तीन महात्मा बैठे थे और अपने-अपने आसनोंपर बैठे हुए थे। उनमेंसे एक महात्मा शरीरसे लंबे, मजबूत, बड़े और बूढ़े-से मालूम होते थे। इन्होंने उन्हीं महात्माको दण्डवत् किया और अपनी बीमारीका हाल कहा। महात्माने इनको अपने आगे लेटनेकी

---

*श्रीशर्माजीने यह लेख जोधपुरसे भेजा था। इस वर्ष स्वामीजी श्रीरामसुखदासजीने जोधपुरमें चातुर्मास किया था। शर्माजी लिखते हैं कि 'ठाकुर मुकनसिंहजी स्वयं यहाँ (रामद्वारा चाँदपोल) पधारे थे। उन्होंने स्वामी (रामसुखदासजी) के कहनेपर स्वयं ही सारी घटना उपर्युक्त रूपसे सुनायी थी। उनके कहनेमें बड़ा संकोच था। घटना सत्य है। श्रीस्वामीजीका कहना है कि इसे छापा जा सकता है। उनके घटना सुनानेपर बड़े विचित्र सात्त्विक भावोंका उदय हुआ था।'

आज्ञा दी और ये उनके सामने लेट गये। तब उन महात्माने दूसरे महात्माको आज्ञा दी कि 'एक छूरी ले आओ।' उस छूरीसे महात्माजीने इनका पेट चीर दिया और अंदरसे दो टार्चके सेल-जैसी गाँठें निकालकर बाहर रख दी। फिर उन्होंने इनको कहा कि 'तुम्हारा रोग निकल गया है, अब केवल एक छोटी-सी गाँठ अंदर और रह गयी है।' फिर खड़े होनेको कहा। ये तुरंत खड़े हो गये और इन्होंने महाराजजीको नमस्कार किया। इतनेमें नींद टूट गयी। गाँठ ज्यों-की-त्यों थी।

दूसरे दिन इनके रिश्तेदार तथा दोस्त इकट्ठे हुए। डाक्टर बुलाये गये और यह निश्चय हुआ कि इनका जल्दी-से-जल्दी ऑपरेशन कराया जाय। डाक्टरोंने कहा कि 'यदि ऑपरेशन न कराया गया और गाँठ पेटमें ही फूट गयी तो ये बचेंगे नहीं, अपितु पाँच मिनटमें ही प्राणान्त हो जायगा।'

ठाकुर मुकनसिंहजीकी इच्छा ऑपरेशन करानेकी बिल्कुल नहीं थी, किसी तरह इन्हें मोटरमें डालकर अस्पताल ले गये। वहाँ ऑपरेशनके लिये पेटके बाल वगैरह काटकर इन्हें लिटा दिया गया। दूसरे दिन सबेरे ही ऑपरेशन करनेका निश्चय हुआ।

रात हो गयी। अब मुकनसिंहजीको मरनेकी चिन्ता नहीं थी, वरं इन्हें इस बातकी चिन्ता थी कि अब 'मुझे पता नहीं किन-किन लोगोंके हाथका खान-पान करना होगा, पलंगपर ही मल-मूत्र त्याग करना होगा। उसकी भी सफाई परस्त्रियाँ (नर्सें) करेंगी। मेरी लाज और धर्म दोनों ही चले जायेंगे।' इसी तरहकी चिन्ता करते-करते उनको एकमात्र माँ दुर्गाका सहारा याद आया और ये मातासे सच्चे हृदयसे प्रार्थना करने लगे। 'हे माँ! हे दुर्गे! हे जगज्जननी! मेरी लज्जा रख और मेरा धर्म बचा। हे माता! अब तो दूसरा कोई भी सहारा नहीं रहा है। माँ! तेरे देखते-देखते मेरा धर्म और लज्जा थोड़े ही जा सकती है? क्या तू मुझे नहीं बचायेगी? क्या नर्सें मुझे नंगा देखेंगी? मुझे किन-किनका जूठा और किन-किनके हाथका खान-पान करायेगी। मेरी रक्षा कर। माँ! तू मेरी रक्षा कर।' यों प्रार्थना करते-करते इनको आज कई दिनोंके बाद नींद आ गयी। नींद ऐसी शान्तिकी आयी कि जैसे वे अपनी माँकी ही गोदमें सो रहे हैं।

सुबह चार बजे इनकी नींद टूटी; तबीयतमें बड़ी शान्ति मालूम

हुई, पेट हल्का प्रतीत हुआ। पेटपर हाथ फेरा तो वह फूला हुआ नहीं था बल्कि पँसलियोंके अंदर घुसा हुआ था। इन्होंने सोचा कि डाक्टर जैसा कहते थे, मालूम होता है उसी प्रकार गाँठ फूट गयी और अब डाक्टरोंके कहनेके अनुसार पाँच-दस मिनटमें ही मेरे प्राण इसी अस्पतालमें छूट जायेंगे। परंतु तबीयतपर शान्ति थी, मृत्युके कोई लक्षण नहीं दिखायी दे रहे थे। इन्होंने अपने लड़केको जगाया और कहा कि, देख, माताने मेरी गाँठ मिटा दी है और मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ। तू जाकर हवेलीसे भाई (बाकराके वर्तमान ठाकुर साहब)को बुला ला। लड़के ठाकुर साहबके पास गये, सब समाचार सुनाया। ठाकुर साहबने सोचा कि वे ऑपरेशनके डरसे बहाना करते हैं परंतु जब ठाकुर साहब मोटरद्वारा अस्पताल पधारे, डाक्टरोंसे जाँच करवायी तब पता लगा कि सचमुच गाँठ नहीं है। डाक्टरोंने मुकनसिंहजीसे पूछा कि 'आपका रोग टट्टीमें या पेशाबमें किस रास्तेसे कैसे निकला?' मुकनसिंहजीने कहा 'मुझे टट्टी या पेशाब अभी कुछ हुआ ही नहीं है।' सबने बड़ा ही आश्चर्य किया।

ये ठाकुर मुकनसिंहजी आज मौजूद हैं। गुर्देकी तकलीफ इनके अब भी कभी-कभी होती है, लेकिन इनका दृढ़ विश्वास है कि उन महात्माओंने जो थोड़ी-सी गाँठ शेष छोड़ दी थी वही तकलीफ देती है और वह भी इसलिये छोड़ी है कि मैं कहीं अपनी माताको भूल न जाऊँ। इससे मुझे बड़ा लाभ है। जब-जब पीड़ा होती है। तब-तब माँके इस पूरे चरित्रका स्मरण हो ही जाता है। ये अपने आपको कृतकृत्य समझते हैं। आपने नवार्णमन्त्रके चार पुरश्चरण भी किये हैं। श्रीदुर्गाजीका पाठ और नामका जप करते ही रहते हैं। माताके बड़े श्रद्धालु, शान्त, एकान्त भक्त हैं। भगवान्‌के अनेक रूपोंमें अपनी माँका ही रूप समझकर ये पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। ये सारी बातें आप गुप्त ही रखना चाहते हैं और प्रचारमें बड़ा ही संकोच रखते हैं, परंतु मित्रोंके आग्रहसे आपका यह सारा वृत्तान्त मालूम हुआ है। 'बोलो भक्त और उनके मातरूप भगवान्‌की जय!'

(कल्याण वर्ष २७, पृष्ठ १४२६)

******

आन्ध्रके भक्त कवि रामदास

(लेखक—श्रीगुरुनाथजी शर्मा)

गोदावरीके पवित्र तटपर भद्राचलम् प्रसिद्ध तीर्थ है। भद्राचलम्को दक्षिणकी अयोध्या कहा जाता है। कहा जाता है कि वनवासके समय भगवान् श्रीराम यहाँ कुछ समय रहे थे। यहाँपर भगवान् श्रीराम, श्रीजानकीजी एवं श्रीलक्ष्मणजीकी भव्य मूर्तियाँ हैं। विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरका निर्माण भक्त श्रीरामदासजीने कराया था।

श्रीरामदासजीका घरका नाम गोपन्न था। वे एक अकिञ्चन नियोगी ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे। आन्ध्रके नियोगी ब्राह्मण वंशपरम्परासे विद्वान् तथा शूरवीर होते आये हैं। श्रीगोपन्न विद्वान् एवं भगवद्भक्तकुलमें उत्पन्न हुए थे। वे बचपनसे भगवान् श्रीरामके सहज भक्त थे। भगवती सरस्वतीकी उनपर कृपा थी। वे अच्छे प्रतिभाशाली कवि थे।

उस समय दक्षिणकी राजगद्दीपर नवाब तानाशाह थे। श्रीगोपन्न राज्यके कर्मचारी हो गये थे। वे भद्राचलममें तहसीलदारके पदपर नियुक्त थे। एक बार लगानवसूलीका समय आया। लगान वसूल होकर तहसीलमें जमा हुआ। ग्यारह लाख सोनेकी मुहरें तहसीलमें लगानमें वसूल होकर जमा हो गयी थीं। भद्राचलम्के तहसीलदार श्रीगोपन्नने रात्रिमें स्वप्न देखा। स्वप्नमें उन्हें सीताजी तथा लक्ष्मणजीके साथ भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। प्रातः उठनेपर श्रीगोपन्नके मनमें यह बात आयी कि यहाँ भगवान्का मन्दिर बनना चाहिये।

श्रीगोपन्नके पास इतना धन कहाँ कि वे मन्दिर बनवा सकें। लेकिन रात्रिमें स्वप्नमें उन्होंने जो कोसलराजकुमारके दर्शन किये थे, उस दिव्य छविने उनके मन, प्राण—सबको एक अद्भुत उन्मादसे भर दिया था। उन्हें सर्वत्र वही मूर्ति दिखायी पड़ती थी। स्नान-पूजनसे निवृत्त होकर वे तहसीलमें पहुँचे। सरकारी खजानेका निरीक्षण करते समय सहसा उनके चित्तमें यह बात आयी—'संसारका सब धन तो श्रीरामका ही है। श्रीदाशरथि प्रभु ही चक्रवर्ती सम्राट् हैं। उनको छोड़कर दूसरेका धन आवेगा कहाँसे। ये ग्यारह लाख मुहरें उन्हींकी तो हैं। उनका मन्दिर इसी धनसे बनेगा।' मनमें बात आयी और कार्य प्रारम्भ हो गया। कारीगर बुलवाये गये, मजदूर एकत्र

हुए, पत्थर गिरने लगा, सामग्री आने लगी। सरकारी खजानेका धन खर्च होने लगा। मन्दिर बनने लगा।

श्रीगोपन्नको न भूख लगती न प्यास, न नींद आती न थकान। वे जुट गये मन्दिर बनवानेमें। कभी कारीगरोंका काम देखते, कभी मजदूरोंका। कभी समान जुटानेकी व्यवस्था करते, कभी स्थान देखते घूमते। एकान्तमें भी मन्दिरकी बात ही उनके मनमें घूमती रहती। क्या कैसे बनेगा, कौन-सा कोना या द्वार किधर बनेगा। कहाँसे क्या सामग्री आयेगी—बस, यही बात उनके चित्तमें घूमती रहती थी। वे नवाबका धन खर्च कर रहे हैं, नवाब विधर्मी हैं, सरकारी खजाना मन्दिर बनानेमें लगनेसे कोई दण्ड मिल सकता है, यह कल्पना भी गोपन्नके चित्तमें नहीं उठी। वे तो श्रीरघुनाथजीकी झलक पाकर परम निर्भय हो चुके थे।

सभी श्रीगोपन्न नहीं होते। सब कहीं सब प्रकारके लोग होते हैं। नवाब तानाशाहको यह समाचार मिल गया कि उनके भद्राचलमके तहसीलदारने पूरा सरकारी खजाना मन्दिर बनवानेमें लगा दिया है। नवाबने सैनिक भेज दिये गोपन्नको पकड़ लानेके लिये।

मन्दिर पूरा बन गया था। भगवान् श्रीराम, श्रीजानकी तथा लक्ष्मणजीकी मूर्तियाँ स्थापित हो चुकी थीं। बड़ी सुन्दर, बड़ी भव्य मूर्तियाँ स्थापित थीं। गोपन्नने अपने आराध्यके दर्शन किये। उनका हृदय गद्गद हो गया। वे कृतकृत्य हो गये। इसी समय नवाबके सैनिक वहाँ पहुँचे। उन्होंने गोपन्नको बंदी बना लिया।

जब बंदी बने गोपन्न नवाबके सामने पहुँचे और नवाबने पूछा—'तुमने किससे पूछकर सरकारी खजानेको मन्दिर बनानेमें लगा दिया?' तो गोपन्नने निर्भयतासे उत्तर दिया—'संसारकी सारी सम्पत्ति तो चक्रवर्ती श्रीअयोध्यानाथकी ही है। उनकी सेवामें लगाना ही सम्पत्तिको सार्थक करना है। मैंने उनकी ही सेवामें धनको लगाया है।'

नवाब तानाशाह स्वभावके अच्छे थे। श्रीगोपन्नने इससे पहले कोई ऐसा कार्य नहीं किया था, जिससे नवाब असंतुष्ट हुए हों। गोपन्नका कार्य सदा सब तहसीलदारोंसे उत्तम रहता था। नवाबको लगा कि गोपन्न इस समय कुछ पागल-से हो गये हैं। अतः नवाबने उनको कारागारमें बंद करनेकी

आज्ञा दे दी। गोपन्न कारागारमें डाल दिये गये।

कारागारमें बंदी होनेका गोपन्नको कोई दुःख नहीं था। उन्हें एक ही दुःख था कि वे भद्राचलम्‌में अपने आराध्यसे दूर कर दिये गये हैं। इसके लिये भी उन्हें नवाबपर कोई क्रोध नहीं था। वे तो कारागारमें ही भगवान्‌की स्तुति लिखने लगे। 'श्रीदाशरथीशतक' नामक एक काव्य ही उन्होंने लिख डाला। जब काव्य पूरा हो गया तो कारागारकी अपनी कोठरीकी खिड़कीसे उसे उन्होंने बाहर गोदावरीकी धारामें फेंक दिया। उस समय चाँदनी रातमें कोई मल्लाह गोदावरीमें अपनी नौका लिये जा रहा था। उसने देखा कि जलके प्रवाहसे ठीक उलटी ओर एक ग्रन्थ अपने-आप मानो तैरता उसकी ओर आ रहा है। कुतूहलवश मल्लाहने वह ग्रन्थ उठा लिया। इस प्रकार अपने भक्तके द्वारा निर्मित उस शतकको श्रीदाशरथि प्रभुने स्वयं सुरक्षित किया।

श्रीगोपन्नको कारागार भिजवाकर नवाब तानाशाह राजमहलमें चले आये थे। एक दिन रात्रिमें वे बड़े सुखसे सो रहे थे। आधी रातके समय दो युवकोंने उन्हें जगाया। नवाबके जगते ही दोनोंने मुहरोंकी थैलियाँ नवाबके सामने उलट दीं। सोनेकी चमकती पीली ग्यारह लाख मुहरोंका ढेर नवाबके सामने लग गया। नवाब चकित-से मुहरोंके ढेरको देखते रह गये। युवकोंने कहा—'हमरा नाम रामन्न और लच्छन्न है। हम श्रीगोपन्नके सेवक हैं। अपने स्वामीका यह ऋण आपके पास पहुँचाने आये हैं। आप अपना धन सम्हाल लीजिये।' इतना कहकर दोनों युवक उस कमरेसे बाहर चले गये।

नवाबकी समझमें कोई बात नहीं आयी। श्रीगोपन्नके पास इतना धन कहाँसे आया? उनके ये सेवक कौन थे? आधी रातके समय ये मेरे महलमें आये कैसे? ये बातें नवाबके चित्तमें हलचल मचाने लगीं। श्रीगोपन्नने नवाबका धन भगवान्‌की सेवामें लगाया था, भगवान्‌के दर्शन नवाबको हुए थे। अब नवाबका चित्त शुद्ध हो गया था। वे समझ गये कि अपने भक्तकी रक्षाके लिये स्वयं श्रीराम और लक्ष्मण उनके पास आये थे। नवाब उसी समय कारागारके लिये चल पड़े।

श्रीगोपन्न अपने आराध्यके कीर्तनमें तन्मय हो रहे थे। नवाब जाकर उनके पैरोंपर गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे। नवाबने सब बातें सुनाकर

कहा—'आप धन्य हैं, जिसके लिये संसारके स्वामी सेवकका वेश बनाकर रात-रातको भटकते हैं।'

श्रीगोपन्नने कहा—'धन्य तो आप हैं जो आपको उन दशरथराजकुमारोंके साक्षात् दर्शन हुए। मुझे तो उन दयामयने अपनी कृपाका अधिकारी नहीं माना है।'

नवाब गोपन्नके चरण पकड़कर बोले—'आप सच्चे रामदास हैं। मैं तो अभागा हूं। मेरी आँखें तो मुहरोंके ढेरपर लगी थीं। मैं उन श्रीराम, लक्ष्मणके आनेपर भी उनके दर्शन नहीं कर सका।'

श्रीगोपन्न बोले—'प्रभु तो सदा सर्वत्र प्रत्यक्ष ही हैं। माया-मोहके वश संसारके पदार्थोंपर दृष्टि लगाये रखनेके कारण ही हमलोग उन्हें देख नहीं पाते। इस मोहकी निवृत्ति उनके चरणोंकी कृपासे ही होती है।'

नवाबने श्रीगोपन्नको कारागारसे मुक्त किया। उनके साथ नवाब भी भद्राचलम् आये और उन्होंने वहाँ भगवान्के दर्शन किये। मन्दिरकी सेवा-पूजाकी नवाबने उत्तम व्यवस्था कर दी। श्रीगोपन्न भद्राचलम्में अब अपने आराध्यका कीर्तन, भजन, पूजन करते हुए निवास करने लगे। अब उन्हें रामदास कहते थे।

भक्त कवि रामदासजी 'दाशरथी-शतक' आन्ध्रमें बहुत प्रख्यात है। इसमें अध्यात्मज्ञानका बड़ी भावपूर्ण पद्धतिसे निरूपण हुआ है।

भक्त कवि रामदास आजीवन भद्राचलम्में श्रीराम, श्रीजानकी एवं श्रीलक्ष्मणजीको अपने कीर्तनोंसे प्रसन्न करते रहे और अन्तमें उनके दिव्यधाम गये।

बोलिये भक्त और उनके भगवान्की जय!

(कल्याण वर्ष २७, पृष्ठ ११५६)

******

राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा है!

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

कहते हैं एक राजाका मन्त्री, ऐसा ही हर हालमें खुश रहनेवाला था। उसका तकियाकलाम था—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं!' एक दिन राजाकी अँगुली कट गयी।

मन्त्रीको दिखाया। वह बोला—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं।'

राजाके तन-बदनमें आग लग गयी। हैं, मेरी तो अँगुली कट गयी, खून बह रहा है और यह कहता है—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं!' भला, इसमें क्या अच्छाई हो सकती है?

गुस्सेमें भरकर आज्ञा दी—मन्त्रीको ले जाकर जेलमें डाल दो।

मन्त्री मुसकराता हुआ चल दिया जेलको। उसकी जुबानपर एक ही वाक्य था—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं।'

राजा शिकार खेलने गये।

रास्ता भूल गये, अकेले पड़ गये, थककर घोड़ेको पेड़से बाँधकर जमीनपर पड़ रहे।

इतनेमें जंगलका राजा घूमता-घामता उधर आ निकला।

शेरको देखकर राजाके होश गुम हो गये!

शेर पास आया। उन्हें फाड़ खानेकी तैयारीमें था कि उसकी नजर उनकी कटी अँगुलीपर पड़ गयी।

मुँह बिचकाकर वह चल दिया।

क्षत-विक्षत शिकारपर वनराज हाथ नहीं डालता!

पास बँधे हुए घोड़ेको उसने फाड़ खाया।

महल लौटकर राजाने आज्ञा दी—जाओ, मन्त्रीको जेलसे निकाल लाओ।

मन्त्रीके आनेपर उन्होंने कहा—मैं मान गया तुम्हारी बात। 'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं।' मेरी अँगुली कटी न रहती तो शेर जरूर ही मुझे फाड़ खाता। पर यह तो बताओ कि तुम्हें जेलमें डलवाकर भगवान्‌ने क्या अच्छाई की?

मन्त्री बोला—सरकार! मैं जेलमें न पड़ा होता तो आप शिकारमें जरूर मुझे साथ ले जाते। मेरा तो कोई अङ्ग क्षत-विक्षत था नहीं। इसलिये शेर मुझे निश्चय ही फाड़ खाता। मेरा जेल जाना अच्छा ही हुआ, नहीं तो मेरी जानकी खैर नहीं थी। हम तत्काल भले ही उसका रहस्य न समझ पायें; परंतु इसमें संदेह नहीं कि भगवान् जो करते हैं अच्छा ही करते हैं!

(कल्याण वर्ष २७, पृष्ठ १२१२)

******

श्रद्धाकी जीत

कितनी स्पष्ट उक्ति है कि जो परमात्माको भजता है, उसके सुख-दुःखका ख्याल परमात्मा स्वयं रखता है। 'हम भक्तोंके, भक्त हमारे।' भक्तोंकी लाज भगवान् कभी नहीं जाने देता। परंतु भक्तको भगवान् कसौटीपर अवश्य कसता है; क्योंकि उसपर कृपादृष्टि भी वही रखता है। भक्तके लिये असम्भव वस्तुको सम्भव वही बना देता है। भक्तकी प्रतिष्ठाको निरन्तर वही बढ़ाता है। इसका अनुभव हमें भक्तोंके परम पवित्र चरित्रोंसे होता है। मीराँ, सूर, तुलसीको कौन नहीं जानता।

यहाँ वैसी ही आधुनिक युगकी घटी हुई एक घटनाकी वास्तविकताको शब्द-रूप देनेका प्रयत्न किया गया है।

मंगलपुर गाँवमें एक प्राणप्रसाद नामक धनी व्यक्ति रहता था। उसका एक लड़का था, उसका नाम था सुखीराम। उचित उम्र होते ही प्राणप्रसादने सुखीरामका ब्याह एक गरीब परिवारकी कन्यासे कर दिया। लड़कीका नाम था चम्पा।

चम्पा ससुराल आयी। उसके अद्वितीय व्यवहारसे लोगोंको विश्वास हो गया कि चम्पा कोई साधारण नारी नहीं है। वह न तो कभी उदास होती, न कभी उसके मुखपर मलिनता ही दीख पड़ती। कठोर वचन बोलना तो जैसे वह सीखी ही न थी। उसके साथ वार्तालापका सुख प्राप्त करनेके लिये हर कोई लालायित रहता।

चम्पाका एक नियम बहुत ही सुन्दर था। प्रतिदिन बड़े सबेरे वह उठती, नित्य-नियमसे निवृत्त होकर रामनामका जप करती। इस नियमको वह किसी मूल्यपर भी न तोड़ती। शैशवकालमें ही उसने यह नियम अपने दादासे सदुपदेशके रूपमें पाया था। नन्हीं पोतीको दुलारते हुए एक दिन दादाने कहा—'बेटी! राम-नाममें अनुपम शक्ति है। एकाग्र मनसे उसका मनन करनेवाले की मानसिक शान्ति किसी भी हालतमें खण्डित नहीं होती। रामनामका निरन्तर नियमानुसार मनन करनेवाला न तो कभी विपत्तियोंसे घबराता है औन न कभी सुखमें छलक ही जाता है। वह सदा, विपत्तिमें दरिया और खुशीमें पैमाना होता है। सच्चा सुख और वास्तविक शान्ति तो

मानवको रामनामके सेवनसे ही प्राप्त होती है।'

चम्पाके कोमल हृदयपर दादाके इन शब्दोंने अनोखा असर किया। वे शब्द उसके हृदयपटलपर सदाके लिये अङ्कित हो गये और वह राम-नामका अखण्डितरूपसे मनन करने लगी। राम-नामका सुरम्य सिक्का उसके हृदयपर जम गया और उसे इससे अद्वितीय आत्मिक शान्ति प्राप्त होने लगी। समय बीता और उसे एक मनोरम चैतन्य प्राप्त हुआ। एक सौम्य तेज उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे प्रस्फुटित होने लगा।

चम्पाके ब्याहके पूर्व ही उसके दादाका देहावसान हो चुका था, किंतु दादाद्वारा दिया गया मन्त्र वह भूली न थी। उसे वह दादाका सबसे श्रेष्ठ उपहार मानती थी। राम-नामका मनन वह अत्यन्त प्रेम एवं श्रद्धासे नित्य करती थी। उसकी भक्ति एवं श्रद्धाकी बात सुनकर उसके श्वसुर प्राणप्रसादको भी कुतूहल-सा हुआ था। हँसी भी आयी थी। सासने भी मुँह बनाते हुए आश्चर्य व्यक्त किया था। ननद भी उसे 'भक्तिन' नामसे सम्बोधन करनेसे नहीं चूकती थी। पाश्चात्य सभ्यताका पुजारी पति तो उसे 'महारानी मीराँ' कहकर ताने मारता।

चम्पा इस उपहासको समझती जरूर थी; पर क्रुद्ध होने, उदास होने और दुखी होनेके बदले वह सबके साथ हँसती और उनकी पाशविक मनःस्थितिपर मन-ही-मन तरस खाती और परमात्मासे उनके लिये सद्बुद्धिकी कामना किया करती। उसका व्यवहार इतना नम्र और सद्भावनापूर्ण था कि उपहासके साथ ही सभी उसके सद्गुणोंकी प्रशंसा करनेको बाध्य होते।

एक बार सुखीराम यकायक बीमार हुआ। परिचित चिकित्सकने इलाज करनेमें जरा भी कसर न रखी, पर दवासे तो दर्द और बढ़ गया। प्राणप्रसादके होश हवा हो गये। क्यों न होते—इकलौता बेटा ही तो था सुखीराम उनका। शहरके बड़े डाक्टरको भी बुलाया गया। डाक्टरने अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रा रखकर रोगी एवं रोगकी छानबीन की। निदान ज्ञात हुआ या नहीं, यह तो वे जानें या भगवान् ही; पर औषध और इंजेक्शन उन्होंने दिये। पर भाग्यने उनके इंजेक्शनोंका साथ न दिया। रोगीकी स्थिति प्रतिक्षण गम्भीर होने लगी।

परिवारके सब लोग घबराने लगे। प्राणप्रसाद भी खिन्न हृदय इधर-

उधर दौड़-धूप करने लगे। बड़ों-बूढ़ोंने सलाह दी—'बड़े-बड़े डाक्टरोंको बुलवाओ और उनके परामर्शसे इलाज करवाओ। बेटेकी जानके आगे धन-दौलतका मोह कैसा? यही तो तुम्हारी सारी दौलत-की-दौलत है। चिकित्सा कराओ, अच्छा हो जायगा।' और साथ ही सान्त्वना भी दी कि 'शरीर है, व्याधि तो उसे प्रतिक्षण घेरे ही रहती है; विधिके विधानको मिटानेमें कौन सफलीभूत हो पाया है इस परिवर्तनशील संसारमें।'

लक्ष्मीपुत्र प्राणप्रसादने ऊँची फीसें देकर बड़े-बड़े चिकित्सक बुलवाये। सबने रोगीकी जाँच की, विचार-विमर्श किया, इलाज भी आरम्भ किया, किंतु उन महानुभावोंके भाग्यमें यश ही नहीं बदा था। रोगीका आराम हराम हो गया। सुखीराम अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगा। डाक्टरोंने निराशा प्रकट की 'रोगी मुश्किलसे चौबीस घंटे निकाल सकेगा।' और अपनी फीस लेकर ....!

प्राणप्रसाद और उसकी पत्नी तो लगभग पागल हो गये। पास-पड़ोसके लोग भी दुखी थे। पढ़ा-लिखा जवान विवाहित बेटा यों असमयमें ही कालकवलित हो जाय तो फिर किस वज्रहृदयको दुःख न हो। 'प्रभु! दुःख ही तेरे सृजनकी परिणति है।' डाक्टरोंका निर्णय सुनकर चम्पा सन्न रह गयी। मानो उसे काठ मार गया हो! पर क्षणभर बाद वह सम्हली। उसमें अनोखा परिवर्तन हुआ। वह उठी। उसने स्नान किया—स्वच्छ वस्त्र पहने। अपने कमरेमें जाकर भगवान् रामकी छविके समक्ष दीप जलाकर खड़ी हो गयी। क्षणभर सीतारामकी सुमनोहर छविको वह निहारती रही। उसके हृदयतलसे दर्दका दरिया उमड़ पड़ा। वह गद्गद् कण्ठसे बोली—भगवन्! मेरी लाज आपके हाथ है। यदि मैं सच्ची सदाचारिणी एवं सत्याचारिणी होऊँ तो मेरे पतिका बाल भी बाँका न होने देना! मुझ दुखियारीको केवल आपका ही अवलम्ब है, प्रार्थना करके वह सजल नयनोंसहित रोगीके कक्षमें गयी, उसने वहाँ उपस्थित प्रत्येकको कक्षसे बाहर जानेकी नम्र प्रार्थना की।

चम्पाके अतिरिक्त अब रोगीके कमरेमें कोई भी न रहा। चम्पाने द्वारको धीरेसे बंद कर दिया। सुखीराम उस समय बेसुध था। चम्पाने पतिका सिर अपने अङ्कमें लिया और पतिके मुखारविन्दको देखकर व्याकुलतासे उसने आँखें बंद कर लीं। दर्द-भरे हृदयसे चम्पा अपने जीवनाधार 'राम'के

परम पवित्र नामका मनन करने लगी। 'रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन सीताराम।'

विश्वास होगा क्या आपको? दो ही घंटेमें अचेतन सुखीराम होशमें आ गया। उसने आँखें खोलीं। क्षीण अवाजमें कहा, 'पानी।'

उन अमृतमय शब्दोंको सुनकर चम्पाकी आँखोंसे अश्रु प्रवाहित हो उठे। उसने पानी दिया—अत्यन्त प्रेमसे पतिके शरीरको सहलाते हुए वह पुनः राम-नामका विश्वासपूर्वक जप करने लगी।

दो घंटे और बीते और रोगी पुकार उठा—'सती, सती।' पुत्रकी आवाज सुनते ही माँ-बाप चौंक उठे। उन्होंने द्वार खटखटाया। चम्पाने धीरेसे पतिके सिरको तकियेपर रखकर दरवाजा खोला। सास-ससुरके चरण स्पर्शकर उसने कहा—'किसी एक सुयोग्य चिकित्सकको बुलाइये। अब चिन्ताका कोई कारण नहीं है।'

दैवी शब्दोंकी भाँति पुत्रवधूके शब्दोंको सुनकर प्राणप्रसाद दौड़े हुए गये और डाक्टरोंको बुला लाये। स्वाभाविक गम्भीरता लिये हुए डाक्टर आये और वह भी एक नहीं बल्कि सात-सात! रोगीको देखा और सब दंग रह गये।

आश्चर्य है कि रोगीकी स्थिति तेजीसे सुधरने लगी।

जाको राखै साइयाँ, मार सकै नहिं कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

कौन कह सकता है कि ये शब्द झूठे हैं.......?

[जनकल्याणके सांनिध्यसे] (कल्याण वर्ष ३९, पृष्ठ ९३८)

******

भक्त-जीवनका एक स्मरणीय प्रसङ्ग

(लेखक—विद्वान् श्रीयुत के. नारायणन्)

भक्तिकी शक्ति अपरिमित है। अनेकों महान् व्यक्तियोंने सच्ची भक्तिके प्रभावसे बहुत-से अद्भुत कार्य कर दिखाये हैं। एकलव्यने केवल गुरुभक्तिके द्वारा धनुर्विद्या सीख ली थी। शिवाजीने गुरुभक्तिके प्रभावसे निडर होकर बाघिनका दूध दुहा था। श्रीमुत्तुस्वामि दीक्षितरने भक्तिपूर्वक अमृतवर्षिणी

राग गाकर पानी बरसाया था। इसी प्रकारके महानुभावोंमें तिरुविशनल्लूर अय्यावय्यर भी एक हैं।

अय्यावय्यर बड़े भक्तिमान् ब्राह्मण थे। नित्य नियमित रूपसे संध्या और पूजा-पाठ करते थे। संस्कृतके बड़े विद्वान् थे। वेद तथा आगमोंमें अच्छा अधिकार रखते थे। सारा गाँव उनका बड़ा आदर करता था। वे यथासाध्य दूसरोंको सहायता भी करते थे।

एक बार उनके पिताके श्राद्धका दिन था। ब्राह्मण लोग आ गये थे। मन्त्रोच्चारण हो रहाथा। ब्रह्मभोजके लिये तैयारियाँ हो रही थीं। श्राद्धके अवसरपर इधर एक ब्राह्मणको प्रधानरूपसे भोजन दिया जाता है। उस भोजनको विष्णुका भोजन कहा जाता है।

इस समय अय्यावय्यर किसी कामसे घरके पिछवाड़ेकी ओर गये। वहाँ थोड़ी दूरपर एक भूखा निम्न जातिका मनुष्य खड़ा था। भूखके मारे उसका पेट पीठसे चिपक गया था। आँखें धँस गयी थीं। वह अय्यावय्यरसे बड़े विनीत भावसे बोला—'स्वामिन्! चार दिनसे कुछ नहीं खाया है। भूखसे तड़प रहा हूँ। कृपा करके कुछ खानेको दें, भूख सही नहीं जाती। प्राण निकले जा रहे हैं।'

अय्यावय्यरका हृदय पिघल उठा। वे तुरंत अंदर गये। और कोई भोजनका सामान तैयार नहीं था; विष्णुके लिये जो भोजनसामग्री पत्तेपर रखी थी, उसीको लाकर अय्यावय्यरने उसके हाथमें दे दिया। वह उसे बड़े चावसे खाकर तृप्त हो गया। उसका हृदय खिल उठा।

इधर पुरोहितोंने देखा तो उनमें बड़ी खलबली मची। अय्यावय्यरने श्राद्धके दिन विष्णु-भोजन किसी निम्न जातिके मनुष्यको दे दिया। यह सबके लिये असह्य था। पुरोहितोंने कह दिया कि अय्यावय्यर प्रायश्चित नहीं करेंगे तो उन्हें जातिभ्रष्ट कर दिया जायगा। प्रायश्चित यह था कि गङ्गास्नान किया जाय।

अय्यावय्यर सोचमें पड़ गये। उनकी अन्तरात्मा कह रही थी कि उन्होंने ठीक ही किया। उनकी दृष्टिमें क्षुधासे मरनेवाले एक जीवको भोजन देना एक बड़ा शुभ कार्य था—वह विष्णु-भोजन ही था, उन्हें इसमें कोई गलती दिखायी नहीं पड़ी। पर अब आज श्राद्ध कैसे हो! गङ्गास्नान कैसे किया जाय। गङ्गा तो यहाँसे हजारों कोस दूर है।

अय्यावय्यर सीधे अपने घरके पीछे जो कुआँ था, उसकी ओर गये। उन्होंने उसके पास खड़े होकर आँखें मूँद लीं और वे कातर स्वरसे भगवती गङ्गादेवीकी प्रार्थना करने लगे—'कैसा आश्चर्य, कुएँमें जल उमड़ने लगा। जलका स्तर धीरे-धीरे ऊँचा होता गया और अन्तमें वह कुएँके ऊपर आ गया। अय्यावय्यरकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे पुरोहितोंके पास आकर बोले—'देखिये, गङ्गाजल आ गया।' पुरोहित अचंभेमें पड़ गये। सब कुएँके पास आ खड़े हुए तो देखा कि कुआँ फेनीले पानीसे उमड़ रहा है।

सबसे बड़े पुरोहितने कहा—'अय्यावय्यर! आप धन्य हैं! हम संकुचित विचारवाले आपकी महिमा क्या जानें?'

फिर क्या था। गङ्गाजल मिल गया था। पुरोहितोंका मन-परिवर्तन भी हो गया था। अय्यावय्यरने स्नान किया और श्राद्धका कार्य विधिपूर्वक सुसम्पन्न हुआ।

आज भी वह दिन बड़ी भक्ति-श्रद्धासे मनाया जाता है। भक्तिमान् ब्राह्मणलोग उस दिन तिरुविशनल्लूरमें इकट्ठे होते हैं और अय्यावय्यरका यशोगान करते हैं।

(कल्याण वर्ष ३१, पृष्ठ १०६५)

******

भक्त प्रेमनाथजी हकीम

(प्रेषक—स्व० श्रीशिवकुमारजी केडिया)

निकुञ्जोपासक श्रीप्रेमनाथजी हकीम लाहौरके सोने-चाँदीके व्यापारी लाला संतरामजी खत्रीके सुपुत्र थे। इनका जन्म संवत् १९७१ में हुआ था। ये चार भाई थे। इनकी माता प्रेमकी मूर्ति थीं। वे परम भगवद्भक्ता थीं। वे अपने जीवनमें बार-बार वृन्दावन आया करती थीं। उनके भक्तिमय सात्त्विक जीवनका बालक प्रेमनाथपर अद्भुत प्रभाव पड़ा।

प्रेमनाथजीकी हिंदी शिक्षा पर्याप्त थी। उर्दू भी वे जानते थे। अंग्रेजीमें उन्होंने मिडिलतक शिक्षा प्राप्त की थी। सोलह वर्षकी आयुमें ये लाहौरके लब्धप्रतिष्ठ हकीम काशीनाथजीके साथ काम करने लगे थे। धीरे-धीरे इन्हें रोगों और उनकी औषधियोंका ज्ञान होने लगा। इनकी बीसवीं वर्षगाँठ पूरी

होते-होते काशीनाथजी हकीमका देहावसान हो गया। तबतक प्रेमनाथजीने गवर्नमेंटसे हकीमीका प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया और काशीनाथजीकी ही दूकानमें अपना औषधालय खोल दिया। धीरे-धीरे उनका अनुभव बढ़ता गया और कुछ ही दिनोंमें इनकी अच्छी हकीमोंमें गणना होने लगी।

औषधालयके कार्यमें दत्त-चित्त रहनेके साथ ही ये सत्सङ्ग-पिपासु भी थे। सत्सङ्ग प्राप्त करनेके लिये ये सतत सचेष्ट रहते थे। फलतः इन्हें सत्सङ्ग मिल भी जाता था। जो महानुभाव मङ्गलमय भगवान्‌की ओर अग्रसर होना चाहते हैं, दयामय प्रभु उनका मार्गप्रदर्शन करते ही हैं। करुणामय जगदीश्वरकी कृपासे प्रेमनाथजीके हृदयपर भक्तिकी छाप पड़ गयी। यह राजा तेजसिंहके मन्दिरमें नियमितरूपसे कीर्तनके लिये जाने लगे। वहाँ कीर्तन करनेवाले प्रभुप्रेमियोंकी भीड़ लगने लगी। हकीमजी उनमें प्रमुख थे। वे प्रतिदिन वहाँ दो-ढाई घंटेतक प्रेममग्न होकर भगवान्‌के नामका मधुर ध्वनिमें कीर्तन करते थे। इनका स्वर भी अत्यन्त मधुर था। लाहौरमें जहाँ-कहीं कीर्तनका आयोजन होता, हकीमजी अपना सारा कार्य छोड़कर वहाँ अवश्य उपस्थित होते।

हकीमजी गौरवर्णके अत्यन्त सुन्दर युवक थे। ये माथेपर वल्लभ-सम्प्रदायका तिलक और गलेमें तुलसीकी माला धारण करते थे। अत्यन्त सरल, स्नेही एवं शीलवान् थे। श्रीकृष्ण-लीलाके कितने पद इन्हें मुखस्थ थे। इनका मधुर पद-गायन सुनकर लोग आत्मविभोर हो जाते। अपने इन स्वाभाविक सद्‌गुणोंसे ये अपने समीपवर्ती लोगोंमें ही नहीं, अधिकांश लाहौरवासियोंके आदर एवं प्रेमके पात्र बन गये थे। इनकी लोकप्रियता एवं ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।

भगवान्‌की दयासे इनका औषधालय भी अच्छी प्रकार चलने लगा। अधिकांश रोगियोंने डाक्टरोंके पास जाना छोड़कर इनके यहाँ आकर चिकित्सा कराना प्रारम्भ कर दिया। श्रीप्रेमनाथजी दरिद्र एवं असहाय रोगियोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते थे, अपितु उनके साथ अत्यन्त स्नेहका व्यवहार करते थे एवं उन्हें निःशुल्क औषध देते थे। कभी-कभी सर्वथा विवश रोगियोंको पथ्य आदि भी वे अपने ही पाससे दिया करते।

एक बार उनके पास एक अत्यन्त दीन रोगी आया। प्रेमनाथजीने

उसे दूधके साथ लेनेके लिये दवा दी। रोगी दूधका नाम सुनते ही उदास हो गया, पर संकोचवश वह कुछ कह नहीं सका। घर आकर उसने उधार दूध लिया। दवाके साथ दूध पी लेनेके बाद वह अँगोछेसे हाथ पोंछने लगा, तो उसने देखा, अँगोछेके छोरमें एक रुपया बँधा था। रोगीको समझते देर नहीं लगी। वह तुरंत प्रेमनाथजीके पास आया और उनकी दयालुताके लिये उनका आभार प्रकट करने लगा। दीन रोगीके अँगोछेमें वह रुपया प्रेमनाथजीने ही चुपकेसे बाँध दिया था। इतना ही नहीं, प्रेमनाथजी अनाथ एवं लाचार रोगियोंके घर बिना बुलाये पहुँच जाते, अत्यन्त प्यारसे उन्हें देखते, सान्त्वना देते, निःशुल्क चिकित्सा करते तथा उनके खाने-पीनेकी भी कुछ-न-कुछ व्यवस्था कर देते। औषध देनेके साथ ही प्रेमनाथजी रोगियोंको भगवत्प्रेमकी बातें भी सुनाया करते। इस प्रकार इनके समीप आकर रोगी अत्यधिक लाभान्वित होते। उन्हें शारीरिक रोगसे ही नहीं, भवरोगसे भी मुक्त होनेकी औषध मिल जाती।

संवत् १९९० में, उन्नीस वर्षकी आयुमें, श्रीप्रेमनाथजी सर्वप्रथम अपने पिताके साथ वृन्दावन धाम गये। वह भूमि इन्हें अत्यन्त प्यारी लगी। फिर तो आप वर्षमें दो-दो तीन-तीन बार वहाँ जाने लगे और एक-एक बार दस-दस, पंद्रह-पंद्रह दिन ठहरने लगे। व्रजभूमि और रासमें इनकी अटूट श्रद्धा हो गयी। अतएव निधिवनमें श्रीहरिदास स्वामीके समाधि-मन्दिरमें आपने श्रीबाँकेबिहारीजीके प्रधान सेवाधिकारीसे दीक्षा ले ली और आप प्रिया-प्रियतमके अनन्य भक्त हो गये। युगल-मन्त्र-जप इनके जीवनका साधन बन गया। गुरु-चरणोंमें आपकी अद्भुत श्रद्धा थी।

व्रजवासियोंको आप अत्यन्त प्यार करते थे। कोई व्रजवासी लाहौर पहुँच जाता तो उससे अपने ही यहाँ ठहरनेका आग्रह करते और उसकी खूब सेवा करते। यदि उसकी कोई आवश्यकता होती तो अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार उसकी पूर्ति करते। इतनेपर भी कुछ कमी रह जाती तो अपने परिचितोंसे चंदा इकट्ठा करके व्रजवासीको संतुष्ट करके ही लौटने देते।

ये व्रजवासियोंके भोलेपनसे अच्छी प्रकार परिचित थे। कोई व्रजवासी किसी बातपर इनसे नाराज हो जाता तो ये उसकी खुशामद करके, यहाँतक कि उसके पैर दबाकर अत्यन्त अनुनय-विनयसे उसे प्रसन्न कर लेते। व्रजमें

आप जब भी जाते, ब्रजवासियोंके घर जाकर उनकी सूखी रोटियाँ और छाछ माँगकर प्रसादकी भाँति अत्यन्त आदर एवं श्रद्धापूर्वक खाते और बदलमें कुछ-न-कुछ उसे अवश्य देते। ब्रजवासियोंको देखते ही आप पुलकित हो उठते थे। किसी भी ब्रजवासीकी निन्दा इन्हें असह्य थी। ब्रजवासियोंकी ये खूब सेवा करते, किसी भी ब्रजवासीसे मिलकर इन्हें लगता जैसे ये ब्रज-प्राण श्रीकृष्णको ही पा गये हों। कोई भी अपरिचित ब्रजवासी इनसे मिलकर अपरिचयका अनुभव नहीं कर पाता था। उसके साथ आप सगे-सम्बन्धीसे भी अधिक गाढ़ आत्मीयताका व्यवहार करते। आप जब-जब ब्रज पधारते, सभी ब्रजवासी इन्हें घेर लेते। आपको श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमामें बड़ा सुख मिलता था। शरीरान्तके दो वर्ष पूर्व तो आपने श्रीगिरिराजकी डंडौती परिक्रमा की थी। यह परिक्रमा ग्यारह दिनोंमें एक रास-मण्डलीके साथ पूरी हुई थी। उसमें कई भक्त, सत्सङ्गी एवं ब्रजके प्रेमी महानुभाव भी थे। सब लोग दिनमें डंडौती परिक्रमाका कार्यक्रम पूरा करते और सूर्यास्त होते ही रुक जाते। रात्रिमें रासलीलाके द्वारा विश्वाधर नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी लीलाका आनन्द प्राप्त करते। आपने ब्रजकी ८४ कोसकी भी यात्रा की थी।

सवंत् १९९३ से श्रीसंतरामजी (प्रेमनाथजीके पिता) वृन्दावन-वास करने लगे और तब श्रीप्रेमनाथजीने श्रीतेजरामजीके मन्दिरमें जाना बंद कर दिया। अब वे अपने औषधालयमें ही नित्य कीर्तन, सत्सङ्ग एवं कथा-वार्ता करने लगे। सत्सङ्ग-प्रेमियोंका समुदाय वहीं एकत्र होने लगा।

श्रीप्रेमनाथजीकी धर्मपत्नी कृष्णा देवीका स्वभाव उनके सर्वथा अनुकूल था। कृष्णा देवीकी रुचि धार्मिक थी। प्रेमनाथजीकी एक कन्या थी, जिसका नाम चन्द्रावली था। उसका विवाह उन्होंने गुजरानवाला जिलेके एक सम्भ्रान्त आस्तिक परिवारमें कर दिया।

लाहौरमें आप प्रायः कोई-न-कोई रासमण्डली बुलाया ही करते। वहाँ श्रीनिहालचंदके मन्दिरमें रासलीला होती। रासमण्डलीका आप खूब सेवा-सत्कार करते। स्वयं बार-बार वृन्दावन तो आते ही, निर्धन सत्सङ्गियोंको अपने व्ययसे साथ ले जाते थे। अन्नकूट आदि महोत्सवोंमें आप अत्यन्त उत्साह एवं उल्लाससे भाग लेते और सहस्रों रुपये व्यय करते। इनकी सम्पूर्ण आय भजन-कीर्तन, ब्रजवासी एवं साधु-महात्माओंकी सेवा, रासलीला तथा

व्रजधामकी यात्रामें ही व्यय होती।

आप सपत्नीक प्रतिदिन सूर्योदयके पूर्व श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवामें बैठ जाते और पूजा-आरतीके अनन्तर घंटों युगल-मन्त्रका जप करते रहते। इनके जीवनका कण-कण और प्रत्येक क्षण श्रीराधाकृष्णके भजन, स्मरण, चिन्तन, लीला-दर्शन एवं कथा-श्रवणमें व्यतीत होता। औषधालयका कार्य तो इनका व्यय चलानेके लिये निमित्त मात्र था; किंतु भगवत्कृपासे रोगियोंको इनकी औषध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती थी।

इन पंक्तियोंके लेखकने स्वयं देखा है, श्रीनिहालचंदजीके मन्दिरमें रासलीलाका कार्यक्रम प्रायः चलता ही रहता था। और उसका सारा व्यय हकीमजी ही वहन करते थे। एक बारकी बात है। वहाँ एक शूद्रा कुबड़ी थी। रासलीलामें हकीमजीकी आज्ञासे वह कुब्जा बनी। ठाकुर बने हुए बालकमें भगवान्‌का आवेश हो गया, उसकी कटि सीधी हो गयी। अब तो उसके मनपर अद्भुत भगवत्प्रभाव पड़ा। वह अपने पति श्रीठाकुरदासजीके साथ वृन्दावन-वास करने लगी। वृन्दावनमें ही उसने शरीर त्याग दिया।

श्रीप्रेमनाथजीने शरीर-त्यागके तीन दिन पूर्व ही सबसे मिलना छोड़ दिया था। विशेष सत्सङ्ग-प्रेमी एवं भजनानन्दी सज्जनोंसे मिलनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। सर्वसाधारणकी भीड़ न हो, इसके लिये उन्होंने पहरेकी व्यवस्था कर ली थी।

प्राण त्यागसे कुछ समय पूर्व आपने महात्मा राधाचरणजी गोस्वामीका सत्सङ्ग-लाभ किया और अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने कहा—'महाराजजी! मुझे भी वृन्दावन ले चलिये।'

गोस्वामीजीने बड़े प्रेमसे कहा—'अच्छे हो जाओ, फिर तुम्हें वृन्दावन ले चलूँगा।'

हकीमजी बोले—'महाराज! श्रीराधारानीकी कृपासे मैं आपके पहले ही श्रीधाम पहुँच जाऊँगा।'

मृत्युसे दो घंटे पूर्व उनके बहनोई मिलने आये। आपने उनके सामने धीरे-धीरे अत्यन्त शान्त मुद्रामें यह सवैया सुनाया—

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि, अनंत, अखंड, अभेद, अछेद सुबेद बतावैं॥

नारद से सुक ब्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

सवैया पूरा होते-होते उनके नेत्र झरने लगे। सिसकते हुए आपने एक पद्य और कहा—

ऐसे नहीं हम चाहनहारे, जो आज तुम्हें, कल और को चाहैं।
फेंक दें आँखें निकारिके दोऊ, जो दूसरि ओर मिलावैं निगाहैं॥
लाख मिलें तुम से बढ़के, तुमहीको चहैं, तुमहीको सराहैं।
प्रान रहै जब लौं, तब लौं हम नेह कौ नातौ सदाही निबाहैं॥

इसके अनन्तर आप मूर्च्छित होने लगे। 'राधे-राधे' रटते हुए आपने अपनी इह-जीवन-लीला समाप्त की।

आपके आदेशानुसार आपका अस्थि-प्रवाह श्रीगिरिराजजीको मानसी-गङ्गामें किया गया।

भक्त श्रीप्रेमनाथजी हकीम इस धरतीपर केवल २८ वर्षतक जीवित रहे, किंतु इसी अल्पकालमें आपने दरिद्रनारायण एवं दरिद्र रोगियोंकी अद्भुत सेवा ही नहीं की, अपना जीवन इतना प्रभु-प्रेममय बना लिया था कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले कितने ही जन भगवद्भजन एवं प्रभुचिन्तनमें लगकर अपने कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं, फिर उन्हें निकुञ्जकी प्राप्ति हुई, इसमें तो संदेहके लिये स्थान ही नहीं। आपके जीवनमें कितने ही चमत्कार हुए, किंतु आप चमत्कारोंकी चर्चातक नहीं करते थे।

(कल्याण वर्ष ३१, पृष्ठ १३६४)

******

ईश्वरीय प्रेरणा

(लेखक—श्रीसुखदेवबिहारीलालजी माथुर)

(१)

मेरे पुत्र भुवनेश्वरीशङ्करकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि वह एफ्० ए० परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके पश्चात् डाक्टरीका अध्ययन करे। उसने एफ्० ए० में बायलाजी विषय लिया था। संयोगवश कथित परीक्षामें वह तृतीय श्रेणीमें पास हुआ।

उसने डाक्टरीका अध्ययन करनेके लिये प्रार्थना पत्र श्रीप्रिंसिपल, मेडिकल कालेज, जयपुर एवं बीकानेरको दिया, परंतु उक्त श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेसे उसका प्रवेश कालेजमें नहीं हो सका एवं उसकी मनःकामना, जो अत्यधिक थी, पूर्ण न हो सकी। अन्तमें उसे बी०एस०सी० में अध्ययन करनेके लिये विवश होना पड़ा।

ईश्वरीय प्रेरणावश मैं एक महीनेके पश्चात् जयपुर गया। मेरे एक परम मित्र श्रीहरिकृष्णदयालजी जज साहब मेरे मकानपर मुझसे मिलनेके लिये आये। उस समय मैं आमेर गया हुआ था। आमेरसे लौटनेपर मुझे मालूम हुआ कि जज साहब मुझसे मिलने आये थे। मैं उसी समय उनके घर पहुँचा। पहुँचनेपर मालूम हुआ कि वे मेड़ता जानेके लिये स्टेशन गये हैं। उनके घरपर चाय-पान करनेका आग्रह किया एवं मैं अत्यधिक थका हुआ था; परंतु ईश्वरीय प्रेरणावश वहाँ नहीं ठहरकर उसी क्षण स्टेशन पहुँचा। संयोगवश गाड़ी पंद्रह मिनट लेट हो गयी। जज साहब मुझसे मिले। परस्पर वार्तालाप हुआ। उन्होंने अपने पुत्रके बारेमें चर्चा की कि मेरा पुत्र बीकानेर मेडिकल कालेजमें अध्ययन कर रहा है। यह सुनकर मुझे अपने पुत्रका ध्यान आया। मैंने उनसे कहा कि 'भुवनेश्वरीशङ्करका मेडिकल कालेजमें प्रवेश न होनेसे उसको बी०एस०सी० में भर्ती होना पड़ा।'

११ अगस्त ५५ को जज साहबके पुत्रने मुझे टेलिग्रामद्वारा सूचित किया कि भुवनेश्वरीशङ्करको शीघ्र बीकानेर भेज दीजिये। मेरा लड़का दूसरे दिन बीकानेर चला गया। १३ अगस्त ५५ को प्रातःकाल वह मेडिकल कालेजमें प्रिंसिपल महोदयके पास उपस्थित हुआ और उन्होंने ही उसका दाखला कर दिया।

कुछ समय व्यतीत होनेपर मालूम हुआ कि जज साहबने मेरे स्टेशनपर मिलनेके पश्चात्, अपने पुत्रको पत्र लिखा कि माथुर साहबके लड़केकी मेडिकल कालेजमें भर्ती नहीं हुई है। जज साहबके पुत्रने वहाँ की पूरी जानकारी प्राप्त की कि कालेजमें एक विद्यार्थी की जगह खाली है, बादमें मुझको तार दिया।

इस सारी घटनाका वर्णन करनेका उद्देश्य यह है कि जिस कार्यको मनुष्य असम्भव समझता है एवं स्वप्न सदृश मान लेता है, वह कार्य भी

ईश्वरीय कृपावश पूर्ण हो जाता है। जिस प्रकार मेरे पुत्रकी आशा निराशामें परिणत हो गयी थी परंतु अकस्मात् उसका प्रवेश मेडिकल कालेजमें हो गया जो कि स्वप्न-सदृश मिथ्या हो चुका था!

(२)

जहाँ नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी कुलश्रेष्ठ)

यह विगत द्वितीय महायुद्धकी एक सच्ची घटना है। एक विमानचालक शत्रुदेशकी स्थितिके चित्र लेनेके लिये रवाना हुआ। पर अपने गन्तव्यपर पहुँचनेसे पूर्व ही विमानभेदी तोपकी गोलियाँ उसके विमानमें लगीं। इससे उसके दोनों इंजिन बेकार हो गये। उस समय वह विमान भूमध्यसागरके ऊपर उड़ रहा था। इंजन बेकार होनेपर विमान नीचेकी ओर गिरने लगा। इस समयतक चालकको पूरा होश था और अपने विमानकी इस दुर्घटनाका एक-एक विवरण भलीभाँति स्मरण था। इसके बादकी घटनाके बारेमें उसे स्मरण नहीं; क्योंकि सम्भवतः उसका विमान समुद्रमें गिरकर तत्काल डूब गया होगा और उसे साथ विमानचालक और उसके साथी भी समुद्रके अतल गर्तमें चले गये होंगे।

इसके बादकी दूसरी, जिस घटनाका उसे स्मरण था, वह यह है कि वह बालक समुद्रकी लहरोंपर तैर रहा है और अपनेको डूबनेसे बचानेकी जीतोड़ कोशिशमें लगा हुआ है। पर उसका एक पैर घुटनेके पाससे कट गया है। उसके पैरसे प्रचुर मात्रामें रक्त बह रहा है और ऐसा लगता है कि मानो वह पानीके बजाय रक्तके सागरमें ही उतरा रहा हो। उसके पैरसे इतनी तेजीसे खून निकल रहा था कि उसकी प्राणशक्ति लगातार घटती जा रही थी। उसे लग रहा था कि वह कुछ ही क्षणोंका मेहमान है। अचानक उसके शरीरसे लकड़ीका एक तख्ता टकराया। यह विमानमें लगी हुई प्लाईवुडका तख्ता था और आश्चर्यकी बात यह थी कि इस तख्तेके ऊपर 'फर्स्ट एड चिकित्सा' का वह बक्सा भी रक्खा हुआ था जो उसके विमानमें रक्खा रहता था। चालकने जिस किसी तरह फर्स्ट एडके बक्सेको खोला और उसमेंसे कपड़ेकी पट्टी निकालकर अपनी जाँघपर कसकर बाँध ली।, जिससे खूनका बहना रुक गया। इतनेमें ही ऊपरसे एक विमान उड़ता

हुआ गुजरा। विमानमें बैठे हुए व्यक्तिने समुद्रकी लहरोंसे संघर्ष करते हुए इस व्यक्तिको देखा तो अपने विमानसे हवा भरा हुआ रबरका एक पहिया नीचे गिरा दिया। लहरोंसे संघर्ष करनेवाले चालकने उस पहियेको पकड़ लिया और उसके सहारे वह लहरोंपर तैरने लगा। थोड़ी देर बाद पानीका एक जहाज वहाँसे गुजरा और उसने उस चालकको अपने ऊपर चढ़ा लिया। अकल्पनीय घटनाओंकी सृष्टि करने और आसन्न मृत्युके मुखमेंसे भी बचा निकालनेकी सामर्थ्यवाले सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ताके प्रति कृतज्ञतासे अभिभूत होकर उस विमानचालकका मुख आँसुओंसे भीग गया।

एक दूसरे विमानचालककी आपबीती सुनिये। यह चालक शत्रुओंपर बमवर्षा करके अपना बमवर्षक विमान लेकर स्वदेश लौटा। पर बमवर्षा करते समय एक छोटा बम उसके विमानके पंखेके पास बिना फटे हुए अटक गया था। वापस लौटकर जब उसका विमान जमीनपर उतरा तो जमीनसे छूनेपर हल्का-सा धक्का लगा, जिससे बमका फटना था कि विमानकी टंकीमें भरे हुए पेट्रोलने आग पकड़ ली और पलभरमें बिजलीकी टार्चकी भाँति सारे विमानमें आग लग गयी। चालक खिड़की खोलकर भागनेका प्रयत्न करने लगा, पर वह सीटसे बेल्टोंद्वारा बँधा हुआ था। वह बेल्टें खोलने लगा। चारों ओर आग लगी हुई थी, जिससे उसकी हाथोंकी अँगुलियाँ प्रतिपल शिथिल होती जा रही थीं। इसके पूर्व कि वह बेल्टोंको खोल पाये, वह संज्ञाहीन हो गया। इसके बाद उसे पता नहीं कि क्या हुआ। अन्तिम बात जो उसे याद थी, वह यह कि उसने अपना अन्त आया देखकर भगवान्से प्रार्थना की थी—'हे भगवन्! मेरी मदद कर।' दूसरी बात जो उसे याद थी वह यह कि वह अस्पतालमें रोगियोंकी चारपाईपर लेटा हुआ है और डाक्टर उसके ऊपर झुका हुआ है। किसीको भी यह पता नहीं कि जलते हुए विमानके भीतरसे उसे कब और किस प्रकार जीवित बाहर निकाला गया। उसने कहा कि मुझे यह विश्वास हो गया कि भगवान्ने मेरी आर्त पुकार सुनी और मुझे तत्क्षण बाहर निकाल लिया।

अधिकांश युवक जिस समय विमानचालककी ट्रेनिंग लेनेके लिये भरती होते हैं, उस समय वे नास्तिक होते हैं। उनका विश्वास होता है कि चालकका कार्य मनुष्यमें असाधारण साहस और वीरताकी अपेक्षा करता

है—ईश्वर नामकी काल्पनिक सत्ताकी अदृश्य शक्तिपर भरोसा करना चालकके पेशेके साथ मेल नहीं खाता। पर वे युवक ट्रेनिंग लेनेके बाद जब विमान लेकर उड़ते हैं, तब ऐसी-ऐसी अदृश्य परिस्थितियाँ सामने आती हैं और वे ऐसे कल्पनातीत परिणामोंमें बदल जाती है कि चालकोंके मन अदृश्य शक्तिके प्रति बलात् आस्थावान् हो जाते हैं। अपने पेशेका व्यावहारिक अनुभव इनमें यह विश्वास पैदा कर देता है कि ऐसी परिस्थितिमें जहाँ कोई सहायता उपलब्ध नहीं हो सकती, वहाँ भगवान्‌का सहारा काम आता है और दुर्घटना होनेपर केवल उसकी ही सहायतासे मनुष्यका उद्धार सम्भव है। जैसे-जैसे ये अकल्पित घटनाएँ दोहराती चलती हैं, वैसे-वैसे विमानचालकके मनमें ईश्वरकी सत्ताके प्रति आस्था दृढ़ होती जाती है।

एक विमानचालकने, जो उस समयतक नास्तिक था, अपने जीवनको मोड़ देनेवाली एक घटना सुनायी। यह भी विगत महायुद्धके समयकी ही घटना है। वह चालक रसद लेकर अपने वायुयानमें बैठा हुआ जा रहा था कि अचानक सामनेसे आते हुए जर्मन बम-वर्षकोंका काफिला दिखलायी दिया। शत्रुके विमानोंका बड़ा भारी काफिला देखकर वह अकेला विमानचालक इतना घबरा गया कि उसका मस्तिष्क आगे कुछ ही नहीं देख पाया। इतनेमें पास ही बैठे हुए उसके सहयोगी गनर (विमानमें लगी हुई मशीनगन चलानेवाला)ने जोरसे कहा, 'विमानको मोड़ो'। पर उस समयतक शत्रुके बम-वर्षक बहुत समीप आ गये थे। यदि वह विमान मोड़ता भी तो उन बम-वर्षकोंकी गोलीकी मारके दायरेसे बाहर नहीं जा सकता था। अतः कोई चारा न देखकर वह मौन होकर भगवान्‌से रक्षाके लिये प्रार्थना करने लगा। गनर अपना गला फाड़कर पुनः चिल्लाया—'अरे सुनता नहीं, विमानको तत्काल मोड़।' पर विमानचालक एकदम मौन रहा। यह देखकर अपनी अन्तिम घड़ी निकट आयी जान वह गनर भी मौन होकर अपने पापोंके लिये भगवान्‌से क्षमा करनेकी प्रार्थनामें लीन हो गया। पता नहीं क्यों, उन जर्मन बम-वर्षकोंके काफिलेके नेताके दिमागमें क्या विचार आया कि सारा-का-सारा काफिला कुछ ही क्षणोंके भीतर मुड़ा और जिस ओरसे आ रहा था उसी ओर भागने लगा और समस्त बमवर्षक क्षणोंमें ही दृष्टिसे दूर होते हुए ओझल हो गये। पर उस विमानचालक और उसके सहयोगी गनरको

यह विश्वास हो गया कि उनकी सच्चे मनसे की गयी प्रार्थनाने ही उन्हें मौतके मुखमेंसे बाहर निकाल लिया।

एक चालक शत्रुके प्रदेशपरसे गुजर रहा था कि उसका विमान शत्रुकी विमानभेदी तोपोंकी मारके भीतर आ गया। तत्काल उसने अपने विमानको आकाशकी ओर मोड़नेकी चेष्टा की, पर विमानकी संचालन-व्यवस्थाने काम करना बंद कर दिया। उधर भूमिपरसे विमानभेदी तोपोंसे गोलियाँ छूटने लगीं। अन्त समय निकट आया देखकर विमानचालकने आर्त वाणीमें भगवान्‌से निवेदन किया—'हे भगवन्! सिर्फ इसी बार मुझे बचा ले, चाहे फिर न बचाना।' पलभरमें न मालूम क्या हुआ कि विमानकी संचालन-व्यवस्थाने काम करना प्रारम्भ कर दिया और चालक विमानको मोड़कर तत्काल दूर आकाशमें उड़ गया।

एक चालकको अपना पेशा प्रारम्भ करनेके कुछ समय बाद अपनी पत्नी और बाल-बच्चोंकी चिन्ता रहने लगी। वह यह सोचता रहता कि यदि मैं किसी दुर्घटनामें समाप्त हो गया तो मेरी पत्नी और बच्चोंकी व्यवस्था कैसे होगी। वह इसी सोच-विचारमें रहा करता था कि एक दिन उसे लड़ाईके मोरचेपर जानेका आदेश आ गया। अब तो उसकी जान बचना लगभग असम्भव ही हो गया। उसे अपने मृत पिताका कहा हुआ यह वचन याद आया कि जब विश्वमें सब सहारे समाप्त हो जाते हैं, तब भगवान्‌का सहारा ही काम देता है। चालकको यद्यपि भगवान्‌में आस्था नहीं थी, पर मनको ढाढ़स देनेके लिये भी कोई वस्तु न थी। अपनेको नितान्त निःसहाय पाकर उसके मनमें अपने पिताका उक्त वचन बार-बार याद आने लगा। अन्तमें जब वह मोरचेपर चलने लगा, तब उसने दीन होकर भगवान्‌से प्रार्थना की—'हे भगवन्! यदि तू वास्तवमें कहीं हो तो मेरी पत्नी और बच्चोंकी मदद करना। मैं तेरे ही सहारे उन्हें छोड़े जाता हूँ।' यह प्रार्थना कई बार करनेके पश्चात् वह लड़ाईपर चला गया। लड़ाई समाप्त होनेपर वह सुरक्षितरूपसे वापस लौट आया। तबसे ईश्वरके प्रति उसका विश्वास निरन्तर बढ़ता गया।

एक अमरीकी विमानचालकने अपने कमरेमें इस प्रकारके वाक्य लिखकर टाँग रखे थे—'जब तुम कष्टमें होओ, तब भगवान्‌से सहायताके

लिये प्रार्थना करो। वह इसमें सीमासे अधिक उदार है। जब तुम कष्टमें न होओ, तब भी उसे स्मरण करना न भूलो। उससे प्रतिदिन किया गया आत्मनिवेदन व्यर्थ नहीं जाता। भगवान् ही एकमात्र ऐसा अति सहृदय व्यक्ति है जो किसी भी समय और किसी भी परिस्थितिमें सहायताके लिये तैयार रहता है—अन्य किसीमें इतनी अधिक उदारता नहीं।'

और यही भावनाएँ अधिकांश विमान-चालकोंकी बन जाती हैं।

(कल्याण वर्ष ३०, पृष्ठ ८३०)

******

सती दाड़ल दे

(लेखक—श्रीआणदजी कालीदास बाघेला)

लगभग छः सौ वर्ष पहलेकी बात है। उस समय सौराष्ट्र-मोरवीके राज्यासनपर राजा रावत रणसिंह आसीन थे। मोरवीमें एक अन्त्यज-दम्पति रहते थे। पतिका नाम था खीमरा और पत्नीका नाम था दाड़ल। ये दोनों बड़े ही सात्त्विक स्वभावके तथा संत-शीलका पालन करनेवाले थे। संसारके प्रपञ्चसे प्रायः अलग रहकर भगवद्भजनमें ही ये अपना जीवननिर्वाह करते थे। दोनोंमें परस्पर बड़ा स्नेह था। दाड़लका पातिव्रत बड़ा विलक्षण था।

एक दिन प्रातःकाल राजा रणसिंह घोड़ेपर सवार होकर शहरमें घूमने निकले। वे एक कुएँके पास पहुँचे। कुछ स्त्रियाँ जल भर रही थीं। कोई पुरुष पास न होनेसे उन्होंने अपने घूँघट उठा रखे थे। राजाकी दृष्टि उनमेंसे एक तरुणी स्त्रीपर पड़ी और वह वहीं ठहर गयी। उन्होंने मन-ही-मन उस रूपसीके सौन्दर्यकी प्रशंसा की। मनमें विकार आ गया। तरुणीने लज्जासे घूँघट निकाल लिया और वह घड़ा उठाकर चल दी। राजाकी बुद्धि मारी गयी थी। उन्होंने भी अपना घोड़ा उसके पीछे लगा दिया। एक जगह युवतीके पास घोड़ा रोककर राजाने अपने हाथसे युवतीका घूँघट उठा दिया और उसकी ओर लुभावनी दृष्टिसे देखा।

युवतीका शरीर राजाके स्पर्शसे मानो जल उठा, उसने बड़े दुःख और रोषभरे शब्दोंमें लज्जासे सिर नीचा करके कहा—'राजा! तुम प्रजाका पालन करनेवाले पिता कहलाते हो। मैं तुम्हारी कन्याके समान हूँ, तुम्हें

जरा भी शर्म नहीं आयी—मेरा स्पर्श करते और घूँघट उठाते। मैं लाजसे मरी जाती हूँ—पर तुम इतने निर्लज्ज हो गये, जो एक निर्दोष अबलापर ऐसा अत्याचार कर बैठे। तुमने बड़ी भूल की।'

'मैं एक नीची जातिकी लड़की हूँ। लोग हमलोगोंको अस्पृश्य मानते हैं और हमसे दूर रहते हैं, परंतु तुम्हारे-जैसे कामके गुलाम मनुष्य तो अत्यन्त अधम तथा सर्वथा अस्पृश्य हैं। तुमने मुझको छूकर मुझे सर्वथा अपवित्र बना दिया है।'

लोग आसपास इकट्ठे हो गये थे। राजा सिर नीचा करके महलकी ओर चले गये।

इसी बीच उसके साथकी और स्त्रियाँ भी वहाँ आ पहुँची थीं। दाड़ल सती थी। उसने अपने पड़ोसकी एक लड़कीसे कहा—'बहिन! तुम कृपा करके मेरे पतिके पास जाकर उनसे कह दो कि दाड़लका शरीर अपवित्र हो गया है, किसी परपुरुषने स्पर्श करके उसके सतीत्वको दूषित कर दिया है। अतएव वह उस शरीरको अब नहीं रखना चाहती है। वह पृथ्वीमें समाधि लेगी। आपको तुरंत बुलाया है।'

उसने खींमराके पास जाकर यह संदेश सुना दिया। वह तो सुनते ही हक्का-बक्का-सा रह गया। दौड़कर दाड़लके पास आया और अपलक नेत्रोंसे उसकी ओर देखता हुआ बोला—'दाड़ल, सती! बताओ, मुझसे क्या गलती हो गयी है?'

दाड़लने नम्रतासे कहा—'स्वामी! आपसे कुछ भी गलती नहीं हुई, होनहारकी बात है। मैं जलका घड़ा लिये अपने रास्ते जा रही थी। राजा रणसिंहने हाथसे स्पर्श करके मेरे शरीरको अपवित्र कर दिया। उसने मेरी ओर कुदृष्टिसे देखा भी। सम्भव है कि बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वह और भी निर्दोष अबलाओंको पापदृष्टिसे देखे। अतः मैं अपना शरीर नष्ट करके राजाके इस पाप-मार्गमें बाधा दूँगी।'

खींमरा—सती! मनुष्य भूलसे भरा प्राणी है। राजाकी भूल हुई, उसे माफ कर दो। इसमें तुम्हारा क्या दोष है? राजा तो प्रजाका पालन करनेवाला माना जाता है।

दाड़ल—इसीलिये तो मैं अपने इस अपवित्र शरीरको नष्ट करके

राजाको पापसे बचाना और उसे प्रजापालक बनाना चाहती हूँ। मैं अब इस शरीरको नहीं रख सकती। आप जल्दी करें।

खीमराने समझ लिया कि सत्यप्रतिज्ञ दाड़ल अपनी बातको कभी नहीं छोड़ेगी, वह कुछ बोल नहीं सका, आँसूभरी आँखोंसे उसकी ओर देखने लगा। तब पतिकी ओर करुण-दृष्टिसे देखकर दाड़लने कहा—'मेरे नाथ! मुझे भी आपका वियोग बहुत असह्य है, परंतु यह अपवित्र शरीर अब आपका स्पर्श करने लायक नहीं रहा। आपकी सेवासे वञ्चित रहकर मैं जीना नहीं चाहती। आप मुझे रोकें नहीं। अब तो मैं निश्चय ही प्रभुकी शरणमें जाऊँगी। प्रभु आपका कल्याण करेंगे। आपकी शुभ भावनाको अचल रक्खेंगे। आप मेरे अपराधोंको क्षमा करें।'

दाड़लके वचन सुनकर खीमरा चुप हो गया। उसने अपने हृदयको दृढ़ बनाया। कुछ दूर एकान्तमें जाकर पृथ्वी माताको प्रणाम किया और सतीकी जीवित समाधिके लिये जमीन खोदकर तैयार कर दी।

सती दाड़लने स्नान किया, स्वच्छ-सुन्दर वस्त्र पहने, गलेमें तुलसीकी माला धारण की। ललाटपर कुंकुमका तिलक लगाया और मुखसे भगवान्‌के नामका उच्चारण आरम्भ कर दिया। उस समय दाड़लके रूपमें सब लोगोंको साक्षात् माता भगवतीके दर्शन होने लगे।

बिजलीकी तरह सारे शहरमें यह समाचार फैल गया। सतीके दर्शनार्थ जनसमूह एकत्र हो गया। लोग आरती उतारने लगे। शंख, घण्टा, घड़ियालकी ध्वनिसे चारों ओर सात्त्विक वातावरण छा गया। मानो पृथ्वीपर स्वर्ग उतर आया हो। राजाको भी समाचार मिला। उन्हें अपनी भूल प्रत्यक्ष दिखायी दी और सर्वथा निर्मल सतीकी समाधिमें अपनेको कारण समझकर राजाका मन पश्चात्तापकी अग्निसे जल उठा। पश्चात्तापकी प्रचण्ड अग्निने राजाके हृदयके दोषरूपी कूड़ेको जला दिया। उनका हृदय पलटा और वे नंगे सिर, नंगे पैर दौड़कर वहाँ जा पहुँचे, जहाँ सती दाड़ल समाधिमें प्रवेश करनेको तैयार थी। राजाका श्वास जोर-जोरसे चल रहा था, आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लगी थी। राजा सहसा आकर सतीके चरणोंमें गिर पड़े और रुँधे कण्ठसे कहने लगे—'देवी! मैं महापापी हूँ, मेरे अपराधको क्षमा कर दो।' दाड़ल—'राजा! मैं क्या क्षमा कर दूँ। तुम्हारा यह सच्चा पश्चात्ताप ही यथार्थ क्षमा

है। मैं तो प्रायश्चित्तके लिये ही समाधि ले रही हूँ। सर्वेश्वर प्रभु सबका कल्याण करते हैं। जब मनुष्य अपनी भूलको समझकर प्रभुके सामने सच्चे हृदयसे रो पड़ता है, तब प्रभु उसे क्षमा कर देते हैं। राजन्! मनुष्यकी जब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तब वह प्रभुको भूलकर विषयोंका दास बन जाता है और तभी उससे ऐसी भूल होती है।'

राजाने गिड़गिड़ाकर अपनेद्वारा बने हुए इस महान् अपराधसे मुक्ति पानेका उपाय पूछा। तब दाड़लने कहा—

'राजा! सच्चा पश्चात्ताप ही प्रायश्चित है। पश्चात्तापभरे हृदयसे भगवान्से करुण-प्रार्थना करो और भविष्यमें पवित्र रहनेकी प्रतिज्ञा करो।'

राजा—'सती! मेरे जीवनका अन्तिम समय सुधर जाय, ऐसा उपदेश करो।' दाड़ल—'जीवनके शेष समयको तथा अन्तकालको सुधारनेके लिये प्रभुकी शरणागति ही परम साधन है। संतोंका संग, भगवन्नामका जप तथा श्रद्धा-भक्तियुक्त हृदयसे भगवान्का आश्रय लेना चाहिये। ऐसा करनेपर सारे अनिष्टोंसे मुक्ति पाकर मनुष्य प्रभु-कृपाका अधिकारी हो जाता है। अतएव तुम अपने मनकी सारी आसक्ति, कामना, ममता, अहंकारको प्रभुके समर्पित करके उनके शरण हो जाओ और जीवनका शेष समय उनके नाम-स्मरणमें लगा दो। तुम्हें अन्तमें निश्चय ही शान्ति मिल जायगी।'

'जो ऐसा करते हैं' उनको शान्ति मिलती ही है और जो भगवान्को भूलकर भोगोंसे ही सुख-प्राप्तिकी आशा रखते हैं, उनको तो जन्म-जन्मान्तरमें निराशा ही प्राप्त होती है।

राजाने सती दाड़लके उपदेशको शिरोधार्य करके उनसे प्रार्थना की— 'देवी! मैं समीपस्थ संतसमाजको निमन्त्रण भेजकर बुला रहा हूँ, तबतक आप समाधिमें प्रवेश न करें।' राजाकी बात दाड़लने मान ली और उसने राजाको आश्वासन दिया।

राजाका निमन्त्रण पाकर उस समयके संत—संत श्रीजेसलजी, सती तोरण दे, संत रामदेवजी, संत कुम्भाजी, सती मालदे, महारानी सती रूपा दे, भक्त ढाँगाजी बनमोर, भक्त साराजी और भक्त सूराजी आदिने पधारकर सुव्यवस्थित रीतिसे भगवन्नामामृतकी सुरसरिधारा बहाकर सतीकी सराहना की और राजा रणसिंहके प्रायश्चितकी पूर्ति तथा पापमुक्तिके लिये परमेश्वरसे

प्रार्थना की। ऐसा लगा, मानो संतोंकी प्रार्थना सुनकर प्रभुने राजाका अपराध क्षमा कर दिया। राजाका श्याम वदन उज्ज्वलता धारण करके चमक उठा। संत समाजके प्रेमभरे आशीर्वादसे राजाके दृष्टिदोषका भी सदाके लिये निवारण हो गया। उनका भूत-वर्तमान-भविष्य बन गया। राजाको सत्यका अनुभव हो गया और उन्होंने प्रत्यक्ष देख लिया कि मानसिक पाप तथा दृष्टिदोषसे देवदुर्लभ मानव-जीवनका कितना अकल्याण होता है और संत-कृपासे किस प्रकार तुरंत कल्याण हो जाता है।

संत-समाजने सती डाइलके स्वामी भक्त खीमराको सनातनमार्गीय समाजके कोतवालके पदपर नियुक्त किया।

सती डाइल दे समस्त संत-समाजसे जय जयराम, जय सीताराम कहकर समाधिमें प्रवेश करनेको उठ खड़ी हुई और राजाको क्षमादान देकर समाधिमें उतर गयी। डाइल दे ने समस्त संत समाजको, भक्तोंको, आबाल-वृद्ध ग्रामनिवासियोंको नमस्कार किया और अपने पतिदेवके चरणोंकी धूलको मस्तकपर रखकर शान्तचित्त और सुप्रसन्न मुखमुद्रासे वह समाधिमें बैठ गयी। उपस्थित नर-नारी—विराट् जनसमुदाय भगवन्नामका गगनभेदी जय घोष करने लगे। माता पृथ्वीने बड़े प्यारके साथ अपनी प्यारी पुत्रीको गोदमें बैठाकर अपने अंदर छिपा लिया।

सती डाइल दे के आश्चर्यजनक सतीत्वके प्रभावने राजा रणसिंहके हृदयको सदाके लिये पवित्र बनाकर उन्हें भगवान्‌का सच्चा भक्त बना दिया।

आजकी स्वच्छन्द नारियाँ इस पवित्रहृदया हरिजन-नारीके सतीत्वगौरवसे शिक्षा ग्रहण करें।

'बोलो सती, संत तथा सत्यकी जय।'

(कल्याण वर्ष ३०, पृष्ठ ११३८)

******

आँखें खोल दीं

जेठकी लपलपाती कड़ी धूप है। जमीन तवे-सी तप रही है, उसपर पैर नहीं रक्खा जाता। ऐसी गरमी पड़ रही है कि तालाबोंका पानी मानो उबाल खा रहा है। दोपहर होनेको आया है। भावनगर राज्यके एक छोटे गाँवका सोंडो नामका माली गाँवके पास ही अपनी बाड़ीमें चरस चला रहा है। मालीके शरीरपर पूरा कपड़ा नहीं है, उसके बैलोंका पेट सट गया है, चरसमें भी छेद हो गया है। सोंडो माली बड़ा गरीब है।

अरबी घोड़ेपर सवार, सिपाहीकी वेष-भूषामें एक मनुष्य सोंडोकी बाड़ीमें आया। बाड़ीमें एक बरगदका पेड़ था, उसकी शीतल छायामें घोड़ेको बाँधकर वह पानी पीनेके लिये कुँएपर गया। उसने हाथ-मुँह और पैर धोकर चुल्लू पानी पिया। सोंडोने चरस हाँकते-हाँकते उससे पूछा—

'भावनगर रहते हो? राजाके सिपाही हो?'

'राजाका नौकर हूँ और भावनगर रहता हूँ।'

'तुम्हारी राजासे कभी भेंट-मुलाकात होती है?'

'हाँ, कई बार, राजाके साथ ही रात-दिन रहना पड़ता है।'

'तो दया करके दरबार बापू विजयसिंहतक मेरा संदेशा भी पहुँचा दोगे?'

'हाँ-हाँ, अवश्य पहुँचा दूँगा, बोलो—क्या कहना है?'

'यों कहना कि बस्तीकी ओर भी तो कभी देखेंगे या सारा जीवन शिकार खेलनेमें ही बिता देंगे? आप महलोंमें बैठे मौज मारते हैं और रैयतके बच्चे रोटीके टुकड़ोंके लिये छटपटाते हैं! वे राजा हैं या कसाई? राजाकी सेवा करके प्रजा मरी जा रही है और राजाको इसका जरा-सा भान भी नहीं होता। भाई! तुम तो सिपाही हो, तुमसे क्या कहूँ? सचमुच कलियुग आ गया है। राम-जैसा राज्य गया, धरती माताने भी कस चुराया और प्रजा भूखों मरने लगी!'

सोंडो जो मनमें आता है बोलता जा रहा है और चरस चलाता जाता है। वह आदमी मंद-मंद मुसकरा रहा है, मानो सोंडोकी बातें सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा है।

सूर्य सिरपर आया और सोंडोने चरस खोल दी। बैलोंको घास

डाला और अपने बरगदकी छायामें आकर बैठ गया। इतनेमें उस आदमीने कहा—'भूख लगी है, कुछ खानेको भी है?'

'क्या होगा? तुम सब मिलकर गरीबोंको लूटनेमें कोई कसर रखते हो? घरमें अनाज तो रहने दिया नहीं। लपसी-मट्ठा खाकर दिन काट रहे हैं। दलिया है, खाओगे?'

'दलिया कैसा होता है?'

'इतने बड़े हो गये और दलियाका पता नहीं? दलिया माने गेहूँकी लपसी।' इतना कहकर, बरगदको डालमें छींकेपर मिट्टीकी हाँड़ीमेंसे थोड़ा दलिया बड़के एक पत्तेपर रखकर सोंडोने उस आदमीको दिया।

बड़ी भूख लगी थी, खट्टे-मीठे मट्ठेमें सिजाया हुआ ठंडा-ठंडा दलिया उस आदमीको अमृत-जैसा स्वादिष्ट लगा। अन्नका महत्त्व भूखा ही जानता है, जिन्हें खाते-खाते मंदाग्नि हो जाती है, उन्हें अन्नके महत्त्वका क्या पता? उसने थोड़ी देरमें पत्ता खाली कर दिया और कहा—'और भी है?'

'मुझे भूखे रक्खोगे?'—यों कहकर सोंडोने हँसते-हँसते सारा दलिया उस मनुष्यको खिला दिया। हाँड़ी खाली हो गयी। उसका पेट भर गया। वह आदमी दलिया खाकर और ठंडा पानी पीकर तृप्त और आप्यायित हो गया। तदनन्तर सोंडोकी टूटी चारपाईपर दो घड़ी विश्राम करता रहा।

शामको चार बजे वह उठा और घोड़ेपर सवार होकर चलनेको तैयार हो गया। जाते समय उसने सोंडोसे पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?'

सोंडो बोला—'भला नामसे तुम्हें क्या करना है भाई? तुम सिपाहीलोग बहुत बुरे हो, हम भावनगर जाते हैं तो बेगारी लिया करते हो।'

घुड़सवारने कहा—'बेगारी नहीं लूँगा, अपना नाम बताओ तो किसी दिन भावनगर आओगे तो पहचान रहेगी।'

'मेरा नाम सोंडो माली। जिसके दिन फिर होते हैं, वही भावनगर जाता है।'

घुड़सवारने मुसकराते हुए घोड़ा दौड़ाया। संध्या हुई और सोंडो माली बैल-चरस आदि लेकर घर आया।

दूसरे दिन सूर्य उगनेसे पहले ही दो घुड़सवार सोंडो मालीका घर पूछते-पूछते आ धमके और जोरसे उन्होंने पूछा—'सोंडोका घर कौन-सा है?'

सोंडो घरसे बाहर निकला और बोला—'क्या है? मेरा नाम सोंडो है।'

'चलो भावनगर, दरबार विजयसिंह बापूने तुमको बुलाया है।'

विजयसिंह बापूका नाम सुनते ही सोंडो थर-थर काँपने लगा। उसके मनमें आया कि हो-न-हो कल जो मैंने संदेशा कहलानेकी मूर्खता की थी, यह उसीका परिणाम है। अब राजा मुझे जीता नहीं रहने देगा। हथकड़ी-बेड़ीसे जड़ देगा। सोंडो ठंडा पड़ गया। उसकी स्त्री और दोनों लड़के रोने लगे। दोनों सवार सोंडोको साथ लेकर भावनगरके रास्ते चले।

वह काँपते हुए पैरोंसे राजमहल पहुँचा। वहाँ जाकर उसने क्या देखा? जो घुड़सवार कल उसकी बाड़ीमें था, वही यहाँ गद्दीपर बैठा है। वह तो स्वयं विजयसिंह बापू हैं भावनगरके राजा। सोंडो तो बापूके सामने जाकर मन्त्रमुग्धके समान खड़ा हो गया।

राजा विजयसिंह गद्दीपरसे उठे। सोंडोका हाथ पकड़कर उसे गद्दीके पास ले गये। गद्दीके पास बैठाकर उसे धीरज देते हुए बोले—'सोंडो! क्यों काँप रहे हो?'

'अन्नदाता! कल आपको उलटी-सीधी बातें कह गया इसी कारण।'

'सोंडो! प्रजा तो मेरी बालक कहलाती है और बच्चोंकी गाली माँ-बापको मीठी लगती है। फिर, तुमने तो सच्ची बात ही कही थी। तुमने तो मेरी आँखें खोल दीं।'

विजयसिंह बापूने ताँबेका पत्तर मँगाया। उसपर बारह एकड़ जमीन, चार भैंस, बारह बैल, बीस कलसी बाजरी और एक हजार रुपये देकर लेख लिख दिया। वह लेख सोंडोको दिया। सोंडोके वंशजोंके पास आज भी वह लेख मौजूद है।

(कल्याण वर्ष २९, पृष्ठ ८५७)

******

ईमानदार चोर

कठियावाड़में एक साल भयानक अकाल पड़ा। लोग दाने-दानेको तरसने और भूखों मरने लगे। छोटा-सा राज्य था। राजाने किसानोंको तकावी और अन्न बाँटना आरम्भ कर दिया।

गाँवमें एक कोइरी रहता था। उसके चार-पाँच बच्चे थे और दो स्त्री-पुरुष वे। घरमें खानेको अन्न नहीं था। बच्चे रोटीके टुकड़ोंके लिये तड़फड़ाते थे। दोनों स्त्री-पुरुष एकदम भूखे रहते और किसी तरह दो-चार दाने बच्चोंके मुँहमें देनेकी चेष्टा करते, पर अन्तमें उनको कुछ भी खिलानेका साधन नहीं रह गया।

कोइरिन बोली—राजाकी सेवामें जाओ, वे अन्न देंगे। कोइरी राजाकी सेवामें गया। राजाने पूछा—'क्या तुम किसान हो? हमारी भूमि जोतते हो?'

'ना, बापू! मैं जमीन नहीं जोतता; मैं गरीब कोइरी हूँ, मेरे बच्चे भूखों मर रहे हैं। अगले साल मैं ज्यादा अनाज लौटा दूँगा। आप दया करते तो अच्छा होता।'

राजाने टका-सा जवाब दे दिया कि 'हम तो अपने किसानोंको तकावी दे रहे हैं; सबको नहीं देते।'

कोइरी बेचारा मुँह लटकाये लौट गया। वह सोचने लगा 'अब क्या करना चाहिये। बच्चोंका दुःख देखा नहीं जाता।'

अन्तमें भूखों मरता हुआ कोइरी राजाके कोठारमें चोरी करनेका विचार करने लगा।

उसने अपने घरसे राजाके कोठारतक एक सुरंग खोदी। बैठे-बैठे चल सकने लायक वह सुरंग थी।

कोठारका ताला बंद था। लोहेके छड़से उसमें एक छेद कर दिया। अनाज भरभराकर गिरने लगा। बहुत दिनोंके बाद अन्नका दर्शन कर बेचारा कोइरी प्रसन्न हो गया। थैलेमें अनाज भरकर उसने छेद बंद कर दिया और प्रसन्न होता हुआ कोइरिनके पास आया।

उसके बाद उसने एक थैली बनायी, ठीक दस सेरके वजनकी। फिर वह रोज रातको उस सुरंगमें जाता और एक थैली अनाज भर लाता। बच्चोंके पेटमें रोटी जाने लगी। अधिक अनाज निकालता तो ऊपर गड्ढा हो जाता और किसीको पता लग जाता। इसलिये वह प्रतिदिन केवल दस सेर अनाज ही लाता था।

कोइरीने इस प्रकार साल बिता दिया और किसीको पता भी नहीं चला कि वह अनाज कहाँसे लाता है।

सालभर पूरा हो गया और दूसरा चौमासा आया। बरसात बहुत अच्छी हुई। दिन अच्छे आये। कोइरी और कोइरिन मजदूरीमें जुट गये। मजदूरी भी खूब चली। खूब अनाज आया। एक दिन दो गाड़ी अनाज भरकर कोइरी राजाके किलेमें पहुँचा। राजाके सामने राम-राम कहकर वह खड़ा हो गया।

राजाने पूछा—'किस तरह आये?'

'बापू! आपका अनाज खाया है। ड्योढ़ा जोड़कर आपको लौटाने आया हूँ।'

राजाकी आँखें लाल हो गयीं। 'इसको तो मैंने नाहीं कर दी थी, फिर किसने अन्न दिया?' उसने कामदारको बुलाया और पूछा—'तुमने इसको कितना अनाज दिया है?'

'नहीं बापू, इसको मैंने अन्न नहीं दिया'—कामदार बोला। 'तब इसको अनाज दिया किसने?'

दोनों हाथ जोड़कर कोइरी बोला—'बापू! मुझको किसीने अनाज नहीं दिया। मैंने आपकी चोरी की है। भूखों मरता था, बच्चे रोटी बिना तड़फड़ाते थे। मैंने अपने घरसे कोठारतक सुरंग खोदकर कोठारसे अनाज चुराया। रोज दस सेर निकालता था। इस तरह साल पूरा हो गया। इस साल खूब कमाया, इसलिये आपका अनाज लौटाने आया हूँ।'

राजाने दाँतों तले अँगुली दबा ली। 'यह चोर है या साहु? इसने अनाज चुराया, इसका किसीको भी पता नहीं था। अरे, पता लगनेवाली बात भी तो नहीं थी। इसने छिपाया होता तो कोई नहीं जानता, फिर भी यह कोइरी अपने-आप अनाज देनेके लिये आया। धन्य है इसको। इसीका नाम ईमानदारी है! इसको चोर कौन कहेगा?'

राजा प्रसन्न हो गये। उन्होंने कोइरीसे कहा—'भाई! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ। तुमने भूखों मरनेपर चोरी की। चोरी न करनी पड़े, इसके लिये तुम अन्न माँगने भी आये। मैंने नहीं दिया। ऐसी दशामें तुम और क्या करते? तुम्हारी चोरीकी बात कोई जानता नहीं था और जान भी नहीं सकता था। फिर भी तुम अपने-आप ड्योढ़ा करके अनाज देने आये हो, यह तुम्हारी सच्चाई है। तुम्हारे-जैसा ईमानदार कोइरी मैंने आज ही देखा।

जाओ, तुम्हारा अनाज मैं तुमको ही दे देता हूँ, ले जाओ।'

तुरंत ही राजाने कामदारसे कहा—'इसको अच्छी-से-अच्छी जमीन दो और अपना जोतदार बना लो एक जोड़ी बैल दो। ऐसे ईमानदार आदमीको दुखी होने देना ठीक नहीं है।'

गाड़ी लेकर कोइरी घर लौटा। कोइरिन और उसके लड़के प्रसन्न हो गये।

अब तो कोइरी खेतिहर बन गया है। खेती करता है। दो-चार अच्छे बरस आये और वे खाने-पीनेवाले बन गये। आज तो कोइरी और कोइरिन सुखसे हैं!

(कल्याण वर्ष २९, पृष्ठ ८५८)

******

चूडाला और मदालसा

(लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय, एम०ए०)

योगवासिष्ठ रामायणमें महर्षि वसिष्ठने एक योगसिद्धा महारानीके आदर्श चरित्रका विशद वर्णन किया है। उनका नाम है देवी चूडाला। वे न तो ऋषिकन्या थीं, न ब्रह्मचारिणी थीं और न गृहत्यागिनी अनिकेता संन्यासिनी ही थीं। वे थीं राजकन्या, राजमहिषी, राजकार्यमें निपुणा आदर्श गृहस्थनिष्ठ महिला। उनके पिता सुराष्ट्रके अधिपति थे और स्वामी थे मालवाधीश राजा शिखिध्वज। सुख-ऐश्वर्यका भोग करते-करते ही उनके हृदयमें वैराग्यका उदय हो आया। स्वामीकी बेजानकारीमें ही वे परमतत्त्वके अनुसंधानमें लग गयीं, किंतु बाहरी कर्तव्यके सम्पादनमें जरा भी उदासीनता नहीं आने पायी। सुनिपुण विचारके फलस्वरूप समस्त अनित्य वस्तुओंके प्रति—सम्पूर्ण राज्य, ऐश्वर्य, सुख-सम्भोगादिके प्रति उनकी आसक्ति जाती रही; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धिके प्रति उनका अभिमान और ममत्व भी नष्ट हो गया; उनके ज्ञानमें आत्मतत्त्वका उदय हो गया और वे अपनेको नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माके रूपमें अनुभव करने लगीं।

'स्वल्पेनैव हि कालेन ययौ विदितवेद्यताम्'

—अति अल्प कालमें ही वे ज्ञानके चरम स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो

गयीं। गार्हस्थ्य-जीवनके सारे कर्तव्योंका भलीभाँति सम्पादन करती हुई भी वे ऐसे गुप्तरूपसे ज्ञानयोग साधनाके अत्यन्त उच्च सोपानपर चढ़ गयीं कि उनके स्वामीतकको भी उनके साधनजीवनका विशेष पता नहीं लगा।

इस प्रकार यद्यपि चूडालाने अपनी तत्त्वानुभूतिकी बातको प्रकट नहीं किया, तथापि तत्त्वज्ञान और परमानन्दकी स्निग्ध ज्योति उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे झलकने लगी। एक दिन अकस्मात् राजा शिखिध्वजकी दृष्टि पत्नीके अपार्थिव ज्योतिर्मण्डित रूप-लावण्यकी ओर खिंच गयी। जिस शारीरिक सौन्दर्यका राजा शिखिध्वजको विवाहके समयसे ही पूरा परिचय था, जिस सौन्दर्यका उपभोग करके वे अबतक विमोहित थे; यह सौन्दर्य वह नहीं था। चूडालाके अङ्ग-अङ्गमें एक विलक्षण दिव्य ज्योति, एक अनुपम चिन्मय लावण्य चमक रहा था। उन्होंने रानीसे इसका रहस्य पूछा। ज्ञानमयी पतिव्रता चूडाला अब अपनेको और अधिक छिपा नहीं सकीं। उनके इस विचित्र रूप-लावण्यका उद्गमस्थान कहाँ था, इस बातको उन्होंने सुन्दररूपसे पतिको खोलकर बता दिया। जब हृदय कामना-वासनासे मुक्त होकर सत्-चित्-प्रेमानन्दघनसे परिपूर्ण हो जाता है, तब उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें भी उसी चिदानन्दकी तरङ्गें उछलने लगती हैं। राजा शिखिध्वज अभीतक इस अतीन्द्रिय अतिमानस आनन्दराज्यकी बात समझनेके अधिकारी नहीं हो सके थे। इसलिये उन्होंने इसे विलासचतुरा पत्नीकी कल्पनाका प्रलाप समझा और कोई ध्यान नहीं दिया। तत्त्वदर्शिनी चूडालाने भी फिर कुछ नहीं कहा।

एकदा नित्यतृप्ताया निरिच्छाया अपि स्वयम्।
चूडालाया बभूवेच्छा लीलया खगमागमें॥

नित्यतृप्ता, निरिच्छा चूडालाके मनमें एक दिन अपने आप यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं योगाभ्यासके द्वारा आकाशविहारादिकी सिद्धि प्राप्त करूँ। अतएव वे सबकी दृष्टि बचाकर एकान्तमें योगकी गूढ़ साधनामें लग गयीं। देहेन्द्रिय-मन तो उनके वशमें थे ही। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदिका बड़ी निपुणताके साथ अभ्यास करके उन्होंने थोड़े ही समयमें इच्छानुकूल सिद्धि प्राप्त कर ली। अनेकों प्रकारके योगैश्वर्य उनके अधीन हो गये। तत्त्वज्ञानके साथ योगैश्वर्यसे समन्वित होकर चूडालाने अपने जीवनको महान् महिमामण्डित बना लिया। इतना होनेपर भी वे व्यावहारिक जीवनमें

उसी प्रकार कुलवधू, वैसी ही राजरानी बनी रहीं। अलौकिक शक्तिको सम्पूर्ण रूपसे अंदर छिपाकर, अहंता-ममतासे रहित होकर, ज्ञानकी दीप्तिको अन्तरमें भरकर, वे अपना लौकिक जीवन बिताने लगीं। अलौकिक ज्ञान और शक्तिका प्राप्त करना जितना कठिन है, उसे अंदर गुप्त रखकर साधारण मनुष्यकी भाँति जीवन बिताना उसकी अपेक्षा कम कठिन नहीं है। चूडाला इसमें भी पूर्णतया सफल हुई।

कालक्रमसे राजा शिखिध्वजके चित्तमें भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। किसीको बिना बताये, सोयी हुई चूडालाका त्याग करके वे गम्भीर रात्रिके समय महलसे निकल गये। निद्राभङ्ग होनेपर राजाको घरमें न देख चूडालाने योगबलसे उनकी गतिविधिको जान लिया एवं योगसिद्धिसे सूक्ष्म देह धारण करके उनका अनुसरण किया। राजा घोर वनमें जाकर कठोर साधनामें लग गये। रानी उनके अनजानमें सब कुछ देखकर फिर राजपुरीमें लौट आयीं। दूसरे दिन रानीने घोषणा कर दी कि राजा किसी विशेष प्रयोजनसे विदेश गये हैं, एवं उन्होंने स्वयं राज्यभार ग्रहण कर लिया है। तदनन्तर चूडाला राज्यके प्रति उनके पतिका जो कर्तव्य था, उसे यथाविधि स्वयं सम्पादन करने लगीं। साथ ही पतिको तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें सहायता करनेके लिये उन्होंने अपने ज्ञान और योगशक्तिका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। पत्नीके लिये पतिके गुरुका आसन ग्रहण करना उचित नहीं, एवं पत्नीके उपदेशका गुरुत्व अनुभव करना भी पतिके लिये कठिन है, ऐसा विचार करके उन्होंने योगबलसे एक योगी पुरुषका रूप धारण करके पतिके पास जाना-आना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार वे उन्हें तत्त्वोपदेश देने लगीं।

शिखिध्वजने परा शान्तिकी प्राप्तिके लिये यद्यपि उत्कट वैराग्यके साथ कठोर तपस्या आरम्भ कर दी, तथापि उनके चित्तमें शान्तिके किसी भी लक्षणका प्रादुर्भाव नहीं हुआ। चूडालाने योगी पुरुषके रूपमें पतिके पास जाकर अपनेको कुम्भ ऋषि बताया जो देवर्षि नारदके अयोनिज पुत्र थे। उन्होंने शिखिध्वजको समझाया कि कठोर तपस्या, बाहरी विषय-वैराग्य, कर्म-त्याग, देहको क्षीण और मृतवत् कर डालना,—ये सब वस्तुतः परा शान्ति प्राप्त करनेके यथार्थ उपाय नहीं हैं, परा शान्ति आत्माका स्वरूप है; आत्माकी स्वरूपानुभूतिसे ही परा शान्तिमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। आत्मा

स्वरूपसे ही सच्चित्परमानन्दघन है एवं उसके स्वरूपकी विच्युति कभी नहीं होती। आत्मानुभूतिमें विघ्न हैं—अहंकार और ममत्व। विषयजगत् और देहेन्द्रिय उसके अन्तराय (विघ्न) नहीं हैं। देहेन्द्रिय और विषयजगत्के प्रति अहंता-ममताका बोध होनेसे ही आत्मापर पर्दा पड़ जाता है और चित्तपर दुःख-तापादिका आक्रमण होता है। अहंके त्यागसे ही मुक्ति, आत्मानुभूति और परम विश्रान्ति प्राप्त होती है। देवी चूडाला इस प्रकार कुम्भके रूपमें अपने पतिको अहंत्यागके उत्कृष्ट साधनकी शिक्षा देने लगीं।

कुम्भके उपदेशसे शिखिध्वजने त्याग और तपस्याके बाह्याडम्बरका त्याग करके अहंकार और ममत्वसे मुक्ति पानेके लिये गम्भीर सूक्ष्म विचार एवं ध्यान-समाधिमें मनोनिवेश किया। अब अनित्य जगत् उनकी अनुभूतिमें मिथ्या प्रतीत होने लगा, आत्मतत्त्वका निरावरण प्रकाश हो गया और वे अन्तरमें परम विश्राम और परम आनन्दका अनुभव करने लगे। जीवनको कृतार्थ समझकर वे राज्यकी, प्रियतमा राजमहिषीकी बात प्रायः भूल ही गये। गुरुदेवने उन्हें राज्यमें लौट जानेका उपदेश दिया; परंतु वे जिस आनन्दका आस्वादन प्राप्त कर चुके थे, उसे छोड़कर फिर मिथ्यामें विक्षेप और अशान्तिमें, कर्म और भोगोंके क्षेत्रमें लौटनेकी उनके चित्तने अनुमति नहीं दी। निर्जन वनमें सर्वत्यागी होकर ध्यान-समाधिमें डूबे रहनेके लिये ही उनके चित्तने दृढ़ संकल्प किया।

तब कुम्भरूपी चूडालाने उन्हें फिर नवीन ज्ञानका आलोक प्रदान किया। उन्होंने उनको समझाया कि उनका अहंकार और ममत्व अभी सम्पूर्ण रूपसे मिटा नहीं है, जगत्के यथार्थ मिथ्यात्वबोधमें वे सुप्रतिष्ठित नहीं हो पाये हैं, उनका त्याग, वैराग्य, आत्मज्ञान और आत्मानन्द उनके सहज जीवनमें अभी प्रवेश नहीं पा सका है, इसी कारण उन्हें राज्यमें लौटने और पत्नीसे मिलनेमें भय और अनिच्छा है। अहंकार और ममतासे मुक्त होनेपर निर्जन वन और लोककोलाहलपूर्ण राज्यमें कोई भेदबुद्धि नहीं रह जाती, कर्म और कर्मत्यागमें कोई अन्तर नहीं रह जाता, भोग और त्यागमें कोई वैषम्य नहीं रहता। जगत्के मिथ्यात्वबोधके विषयमें जब दृढ़ निश्चय हो जाता है, तब उस मिथ्या जगत्से भागकर शान्तिलाभकी आकांक्षा या आवश्यकता होगी ही कैसे? जबतक मिथ्याका सत्यरूपमें बोध रहता है, तभीतक वह सत्यपर

पर्दा डालकर विक्षेप, अशान्ति, शोक और तापका सृजन कर सकता है, तभीतक इन्द्रिय और मनको उससे हटाकर सत्यके अनुसंधानमें लगाना आवश्यक होता है। मिथ्या जगत् वस्तुतः परम सत्यस्वरूप आत्माका ही विवर्त है, आत्माका ही विचित्र विलास है। जब चित्तसे मिथ्या नामरूपके प्रति राग और द्वेष मिट जाते हैं, अन्तरमें त्याग और वैराग्य सुप्रतिष्ठित हो जाते हैं, सत्यस्वरूप आत्माके अपरोक्ष ज्ञानद्वारा चित्त आलोकित हो जाता है, तब यह प्रतीयमान मिथ्या जगत् आत्मानन्दमें कोई व्याघात तो उत्पन्न कर ही नहीं सकता; वरं मिथ्याका यह वैचित्र्य ही एक सत्यस्वरूपके अखण्ड आनन्दको ही विचित्र रूपमें, विचित्र रसमें सम्भोग कराता है। जगद्-वैचित्र्यकी सम्पर्कतासे जबतक चित्तमें भय, आशङ्का और तृष्णा रहती है, तबतक समझना होगा कि अन्तर अहंता-ममतासे मुक्त नहीं हुआ, चित्तमें त्याग-वैराग्यकी यथार्थ प्रतिष्ठा नहीं हुई, जगत्का मिथ्यात्व-बोध सुदृढ़ नहीं हुआ, आत्मानन्द और आत्मज्ञान जीवनमें सहज नहीं हुआ। जगत्कोलाहलमें ही ज्ञानकी और चरित्रकी परीक्षा है। कर्म-जीवनमें आत्मज्ञान, आत्मानन्द और परम विश्रान्तिके अव्याहत रहनेपर ही योगसाधनाकी पूर्ण सिद्धि होती है।

कुम्भरूपी चूडालाके नूतन उपदेशके आलोकमें शिखिध्वजने नवीन रूपसे विचार और ध्यानका सम्यक् अनुशीलन करके अहंकार और ममतासे पूर्ण मुक्ति प्राप्त की, आत्मज्ञान और आत्मानन्दमें वे कृत-कृतार्थ हो गये। अब जगत्में उन्हें बन्धन और क्लेशका कोई भय नहीं रहा। समाधि और जागरण उनके लिये समान हो गये। कर्म-भोगमय गार्हस्थ्य-जीवनमें समाधिके आत्मानन्दकी अव्याहत धारा प्रवाहित रखनेका कौशल उनको प्राप्त हो गया। अतएव राजधानीमें लौटकर राजकार्य करनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं रह गयी।

सद्गुरुरूपा चूडालादेवीने स्वामीके तत्त्वज्ञानकी एक और अद्भुत परीक्षा की। स्वामीको राजधानीमें लौटानेसे पहले योगबलसे एक ही समयमें वे कुम्भ और चूडाला—इन दो रूपोंको धारण करके स्वामीके सामने आयीं एवं शिखिध्वजके सामने ही दोनों प्रेमका अभिनय करने लगे। शिखिध्वजके चित्तमें इससे भी कोई विकार न आया। उनके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। वे इस चरम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। वे अभिमान और ममत्व-बोधसे मुक्त हो गये, उनका समदर्शन सुप्रतिष्ठित हो गया, सभी अवस्थाओंमें

उनका चित्त अक्षुब्ध एवं आत्मज्ञान तथा आत्मानन्द अव्याहत रहने लगा। वे विश्वजित्-रूपमें विराजित रहने लगे—

'इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।'

तदनन्तर कुम्भ और चूडाला शिखिध्वजके पास आये और दोनों देह मिलकर एक हो गयी। तदनन्तर महायोगिनी चूडाला पतिव्रता नारीके रूपमें पतिसे मिलीं एवं पूर्ण ज्ञानमें प्रतिष्ठित पतिको लेकर राजधानीमें लौट आयीं। राजकार्य पूर्ववत् चलने लगा। योगसिद्धा पत्नीकी कृपासे राजा शिखिध्वज—

'निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।'

—होकर सभी प्रकारके जागतिक कार्योंका अनासक्त भावसे सम्पादन करने लगे।

(२)

अब एक दूसरी महीयसी नारीके उज्ज्वल चरित्रका स्मरण करना है। इनका नाम था मदालसा। उनका चिरस्मरणीय चरित्र मार्कण्डेयपुराणमें विशदरूपसे वर्णित है। ये विश्वावसु नामक एक गन्धर्वकी कन्या थीं एवं ऋतध्वज नामक राजाकी पत्नी। भगवान् शंकरकी कृपासे योगविद्या और तत्त्वज्ञानमें पारदर्शिनी हो गयीं। उन्हें 'कृपासिद्ध' कहा जा सकता है। उनके अन्तरमें पूर्ण तत्त्वदृष्टि थी, पर बाहर व्यावहारिक जीवनमें वे एक पतिव्रता, गृहकर्मरता, धर्मचारिणी रमणी थीं। संतानको अति शैशवकालसे ही तत्त्वज्ञानकी दीक्षा देनेका एक महान् आदर्श इसी आदर्श जननीने अपने जीवनमें उपस्थित किया है। मदालसाकी यह धारणा नहीं थी कि शिशु कुछ समझता नहीं है। मानव शिशु जिस क्षण भूमिष्ठ होता है, उसी क्षणसे उसका मन गठित होने लगता है। तभीसे उसे जैसी शिक्षा मिलती है, उसके अनजानमें उसीके अनुरूप संस्कार पुष्ट होकर शिशुके मनको एक विशिष्ट आकारका बनाते रहते हैं। अतएव संतान उत्पन्न होनेके साथ-ही-साथ जननी मदालसा उसे शिक्षा देनेका मानो व्रत ले लेती थीं, यही तो गार्हस्थ्य-जीवनमें माताका महान् दायित्व है।

प्रथम पुत्रका जन्म हुआ। पिताने उसका नाम रक्खा 'विक्रान्त'। क्षत्रियराज पुत्रको विक्रमशाली ही देखना चाहता है। जननी मदालसा हँसीं। नाम-रूपसे अतीत सर्वसम्बन्धोंसे रहित सच्चिदानन्दमय परमात्मा इधर एक क्षुद्र शिशुदेहमें राजपुत्ररूपसे परिचित हो रहे हैं; उधर वही राजाकी देहमें

पितृत्वका अभिमान करके शिशुको पुत्रके और राज्यके उत्तराधिकारीके रूपमें देखकर उल्लसित हो रहे हैं। मायाका कैसा विचित्र विलास है? शिशु सुकोमल शय्यापर लेटा हुआ जोरसे रोने लगा। माता मदालसा उसे गोदमें लेकर लोरी देने लगीं—

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥

'लाल! अरे, तू शुद्ध आत्मा है; तेरा कोई नाम नहीं। कल्पनाके द्वारा अभी इस देहमें तेरे एक नामकी योजना कर दी गयी। न तो यह पञ्चभूतात्मक देह ही तेरा है और न तू ही इस देहका है। फिर रोता क्यों है?'

फिर कहने लगीं—'नहीं, तू नहीं रोता है; शब्द तो अपने-आप ही उत्पन्न होता है और देहके साथ सम्बन्ध जोड़कर क्रन्दनरूपमें प्रकट होता है। इस देहेन्द्रियका अवलम्बन करके जितने गुण और दोष प्रकट होते हैं, सभी देहेन्द्रियके विकार हैं; तुझमें न तो वस्तुतः कोई दोष है और न कोई गुण ही है। तथापि तुझमें ये सब दोष-गुण आरोपित होते हैं।'

माता सुमधुर स्वरोंमें विशुद्ध आत्मतत्त्वका वर्णन करके श्लोककी आवृत्ति करती रहतीं, अन्तरकी अनुभूतिको मिलाकर श्लोकोंको जीवन्त कर देतीं और शिशुके अंदर सच्चिदानन्द स्वरूपका दर्शन करके तन्मय हो जाती थीं। शिशु भी रोना भूलकर जननीके प्रेमपूर्ण सुमधुर संगीतके श्रवणमें तन्मय हो जाता, जननीके हृदयकी अनुभूति शिशुके चित्तमें प्रविष्ट हो जाती और उसी भावसे भावित होकर शिशुका संस्कारात्मक मन गठित होता रहता। वयोवृद्धिके साथ-साथ शिशुकी विचारशक्ति और अनुभवशक्ति जितनी ही विकसित होती जाती, माताका उपदेश उतना ही उसके विचार और अनुभवमें जाग्रत्, जीवन्त और शक्तिशाली होकर देदीप्यमान होता जाता था।

पुत्र बड़ा हुआ। पिता तथा शिक्षकोंसे अनेक प्रकारका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। राजपुत्रोचित शिक्षामें सफलता प्राप्त की। साथ-ही-साथ माताकी तत्त्वज्ञानकी शिक्षा भी चलने लगी। समस्त जागतिक ज्ञान और कर्म तत्त्वज्ञानके आलोकमें पवित्र, सुन्दर और मधुर होकर विकसित होने लगे। माताके अनुग्रहसे राजकुमार अन्तरमें परम तत्त्व-ज्ञान धारण करके बाहर अनासक्तभावसे, तथापि निपुणताके साथ सभी राज-कर्म और लोकहितकर

कर्म सम्पादन करनेमें सुशिक्षित हो गया।

कालक्रमसे ऋतध्वज और मदालसाके द्वितीय और तृतीय पुत्र उत्पन्न हुए। पिताने उन दोनोंका नाम रक्खा सुबाहु और शत्रुमर्दन। प्रतिबार ही नामकरणके समय मदालसा हँसती रहतीं। स्वामी पत्नीकी इस हँसीका अर्थ न समझ पाते। द्वितीय और तृतीय पुत्रको भी माताने प्रथम पुत्रके समान ही लोरी देते, प्यार करते, स्तन पिलाते और खेल खिलानेके समय गम्भीर तत्त्वोपदेश प्रदान किया, अतएव अवस्था प्राप्त होनेपर सभी व्यवहार और व्यावहारिक ज्ञानको वे दोनों भी किस प्रकार तत्त्वज्ञानके द्वारा अनुप्राणित करके संसारमें प्रयोग किया जाता है, इस कौशलको सीख गये। माताकी कृपासे तीनों ही पुत्र ज्ञानी और कृतार्थ हो गये। तीनों ही पुत्र संसारमें अनासक्त, परंतु कर्तव्यपरायण थे। सकाम कर्ममें किसीकी रुचि नहीं थी, किसीके प्रति उनका बैरभाव, हिंसा, घृणा और अनिष्टाचरण नहीं था। दूसरेका दमन करके स्वयं बड़ा बननेकी उनमें आकांक्षा नहीं थी। दिग्विजय करके अपने साम्राज्यको बढ़ानेकी इच्छा नहीं थी। वे सभीके साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये समुत्सुक रहते थे। उनके अन्तरमें कोई दुश्चिन्ता, दौर्मनस्य और अस्थिरता नहीं थी। जीवन प्रफुल्लतामय, अहंता-ममताशून्य, कर्तृत्व-भोक्तृत्वके अभिमानसे सर्वथा मुक्त और ज्ञानज्योतिसे उद्भासित था।

माता मदालसाने यथासमय चतुर्थ पुत्र प्रसव किया। इस बार ऋतध्वजने पुत्रका नामकरण न करके मदालसासे करनेको कहा। मदालसाकी हँसी उनके मनमें थी। माताने पुत्रका नाम रक्खा—अलर्क। राजाने अलर्क नाम सुन हँसकर मदालसासे इस नामका अर्थ पूछा। रानीने कहा—'महाराज, नामका तो कोई अर्थ आवश्यक नहीं होता। नामके शाब्दिक अर्थके साथ आत्माका तो कोई भी सम्बन्ध है ही नहीं, देह और चरित्रका भी कोई सम्बन्ध नहीं है। नाम तो लौकिक व्यवहार चलानेके लिये एक शाब्दिक संकेतमात्र है। मेरा रक्खा हुआ यह नाम जिस प्रकार निरर्थक है, नामके द्वारा इनके अन्तर्जीवन या बहिर्जीवनका कोई परिचय नहीं मिल सकता। हाँ 'नाम' रखनेवालेकी वासना-कामना और आशा-आकांक्षाका पर्याप्त परिचय उससे अवश्य मिलता है।' तत्त्ववादिनी स्त्रीकी बातोंपर राजा चुप रह गये।

स्तन्यपानके साथ-साथ पुत्रकी शिक्षा आरम्भ हुई। इस बार राजाने

रानीसे यह अनुरोध किया कि तीन पुत्रोंको निवृत्ति-मार्गकी शिक्षा दी जा चुकी है, अब इस चतुर्थ पुत्रको प्रवृत्तिमार्गकी शिक्षा देनी चाहिये, नहीं तो वंश-परम्परा लुप्त हो जानेकी आकांक्षा है। प्रवृत्तिमूलक धर्ममें आस्था न रहनेके कारण गार्हस्थ्योचित कर्तव्यकर्मोंका सम्पादन उत्साहके साथ नहीं हो पाता, उससे समाज और राष्ट्रके अभ्युदयमें भी व्याघात होता है, समाज और राष्ट्रकी उन्नति और उसका कार्य निर्विघ्न तथा भलीभाँति न चलनेसे निवृत्तिमूलक धर्मके अनुशीलनमें भी बाधा होती है।

पतिव्रता रमणीने स्वामीके संकेतको शिरोधार्य किया। क्षुधाके समय स्तन्यदान, रोनेके समय सान्त्वना-दान, हाथ-पैर-संचालनके समय उत्साह-दान, खेलके समय आनन्द-दानके साथ-साथ माता मदालसा अपने इस चतुर्थ पुत्र अलर्कके अन्तःकरणमें राजकुमारोचित मर्यादा और कर्मजीवनका आदर्श जगाने लगीं। दुष्टोंका दमन, शिष्टोंका पालन, शिक्षाका विस्तार, देश और समाजमें शान्ति-शृंखलाका संरक्षण, दरिद्रोंकी सेवा, देव-द्विजोंमें भक्ति, याग-यज्ञादिका प्रवर्तन इत्यादि महान् आदर्शोंके द्वारा वे पुत्रके चित्तको अनुप्राणित करने लगीं। वयोवृद्धिके साथ-साथ माताने उसको समयोचित राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण, मनुष्य-ऋण, भूत-ऋण, वर्णधर्म, आश्रमधर्म आदि सभी विषयोंमें सुशिक्षित कर दिया। माताकी शिक्षासे अलर्क प्रख्यात राजवंशका उपयुक्त उत्तराधिकारी बन गया। वृद्धावस्थामें स्वामी और स्त्रीने अलर्कके हाथमें राज्यभार सौंपकर नित्य-निरन्तर ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मध्यान और ब्रह्मानन्द-रसपानमें निमग्न रहनेके लिये वनगमनका संकल्प किया। पहले तीनों भाइयोंको तो कोई राज्यलिप्सा थी नहीं, तत्त्वानुशीलन ही उनको सर्वथा प्रिय था। अतः सबसे छोटे भाईको स्वेच्छासे राज्य देकर वे तीनों मानवजीवनके चरम-लक्ष्यको सिद्ध करनेमें लग गये, अलर्कने आनन्दके साथ धर्मको साक्षी करके राज्यभार ग्रहण किया।

माता मदालसा विदा होनेसे पूर्व अलर्कको एक सोनेकी अँगूठी देकर बोलीं—'इस अँगूठीके भीतर एक रेशमी वस्त्रपर सूक्ष्म अक्षरोंमें मेरा अन्तिम उपदेश लिखा रक्खा है; जीवनमें जब कभी किसी घोर समस्यामें पड़ो, तब उसे खोलकर पढ़ लेना।'

अलर्क बहुत दिनोंतक शौर्य, वीर्य और धर्मनिष्ठाके साथ राज्य करता

रहा, उसने बहुत-से याग-यज्ञादि किये, असाधारण प्रभावका विस्तार किया, प्रजाका मनोरंजन किया और राजवंशकी मर्यादा बढ़ायी। उसके अनेकों पुत्र-पौत्रादि हुए, भोग-विलास भी यथेष्ट कर लिया; किंतु इतना सब होनेपर भी इस दीर्घकालमें न तो उसके मनमें विवेकका उदय हुआ, न संसारसे वैराग्य हुआ और न अभिमान-ममताके मोहमें ही कमी हुई। उसको इस प्रकार प्रपञ्चमें फँसा देखकर ज्ञाननिष्ठ बड़े भाइयोंके हृदयमें उसके प्रति करुणाका उद्रेक हो आया। उन लोगोंके मनमें आया कि ऐसी माताके गर्भमें जन्म लेकर भी हमारा भाई अलर्क मातृधनसे वञ्चित रहकर दुर्लभ मानवजीवन वृथा खो रहा है। सुबाहुने उसका उद्धार करनेका निश्चय किया और दूसरा कोई सुगम उपाय न देखकर उसने काशिराजसे सहायताकी प्रार्थना की। उसने काशिराजको समझाया कि मेरा छोटा भाई अन्यायपूर्वक पिताके राज्यपर अधिकार कर बैठा है, अतएव राज्यको उसके हाथसे निकालनेमें आप मेरी सहायता करें। काशिराजने सुबाहुको साथ लेकर अलर्कके राज्यपर आक्रमण किया। अलर्कके कई मित्र भी शत्रुपक्षमें मिल गये। उसका खजाना खाली हो गया। अलर्क बेचारा बड़ी विपत्तिमें पड़ा। अब उसे माताकी बात याद आयी और उसकी दृष्टि माताकी दी हुई सोनेकी अँगूठीपर पड़ी। आन्तरिक श्रद्धा-भक्ति और पूरे भरोसेके साथ उसने अँगूठी खोली और माताका अन्तिम उपदेश पढ़ा। उसमें लिखा था—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत् कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

अर्थात्—सङ्ग (आसक्ति) सर्वतोभावेन त्याज्य है; यदि उसका त्याग करनेमें असमर्थ हो तो साधुजनोंका सङ्ग करो। साधुसङ्ग सब रोगोंकी औषध है। कामनाका सर्वथा त्याग करना चाहिये। यदि कामनाओंका सर्वथा त्याग न किया जा सके तो केवल यह कामना करो कि मेरे मनमें मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् हो जाय। मुक्तिकी कामना सभी कामना-रोगोंकी औषध है।

माताके इस अन्तिम उपदेशको बार-बार पढ़कर अलर्कके निराश हृदयमें आशाका संचार हो आया। वह जीवन्मुक्त साधुकी खोजमें लगा।

सौभाग्यसे योगीश्वर दत्तात्रेयके साथ उसका साक्षात्कार हो गया। अलर्कने इस लोकोत्तर साधुके चरणोंमें आत्मनिवेदन कर दिया। माताके आशीर्वादके प्रभावसे उसके रोगका निदान स्वतः उसके चित्तमें प्रकाशित हो गया। दत्तात्रेयके प्रश्नके उत्तरमें उसने स्वयं ही कहा कि 'अहंकार और ममत्वका बोध ही उसका रोग था और उसीके प्रतिकारके लिये वह उनके शरणापन्न हुआ था।'

योगिराज दत्तात्रेयने करुणा-कोमल हृदयसे मदालसातनय अलर्कको ज्ञान और योगका उपदेश दिया तथा अहंकार और ममताके मोहसे छूटनेका उसे आशीर्वाद दिया। अलर्कके चित्तसे मोहान्धकार दूर हो गया। वह गुरुजीको प्रणाम करके तत्क्षण काशिराजके शिविरकी ओर दौड़ा। काशिराज और उसके भाई सुबाहु एक ही आसनपर आसीन थे। उसने काशिराजसे कहा कि 'वे प्रजामण्डलपर उत्पात न करके उसके राज्यको अपने राज्यमें मिला लें अथवा उसे सुबाहुको दे दें।' काशिराजके पूछनेपर उसने स्पष्ट कर दिया कि 'माताके प्रसादसे और साधुसङ्गके प्रभावसे मैंने ज्ञानराज्यपर अधिकार प्राप्त कर लिया है।' तब सुबाहुने कहा—'मेरा उद्देश्य सिद्ध हो गया, अब मैं चला; राज्यसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं; मेरा भाई राज्यबन्धनसे मुक्त हो गया, मैं चरितार्थ हो गया। मैं तो यही चाहता था।' यह सुनकर काशिराज अवाक् रह गये। उन्होंने सुबाहुसे और कुछ कालतक रहनेका अनुरोध करते हुए कहा—'तुम्हारी ही कृपासे तुम्हारा भाई मोहनिर्मुक्त हुआ है, अब तुम मुझपर कृपा करो। मैं क्यों साधुके प्रसादसे वञ्चित रहूँ?' सुबाहु काशिराजको तत्त्वोपदेश करके विदा हुआ। अलर्क अपने बड़े भाईको प्रणाम करके उसके अनुग्रहके लिये बार-बार कृतज्ञता प्रकट करने लगा। काशिराजने भी अपनी राजधानीमें लौटकर नवीन ज्ञानके आलोकमें नवीन जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। अलर्कने राजधानीमें लौटकर ज्येष्ठ पुत्रको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं ज्ञान और योगकी साधनामें निमग्न रहनेके उद्देश्यसे वानप्रस्थआश्रम ग्रहण किया। जननी मदालसाकी शिक्षाके प्रभावसे उसके सभी पुत्र परम और चरम कल्याणके अधिकारी हुए।

सभी युगोंमें ऐसी योगसिद्धा महानारियाँ भारतमाताकी गोदमें आविर्भूत होकर भारतीय संस्कृतिको सुस्निग्ध और समुज्ज्वल करती आयी हैं।

(कल्याण वर्ष २१, पृष्ठ १०७७)

******

संत लोयन-लाखा

(लेखक—श्रीआणंदजी कालीदास वाघेला)

सौराष्ट्रके संत-समाजमें लाखा-लोयनका स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। कहा जाता है कि विक्रम संवत् १३००/१४०० में सौराष्ट्रके हालारप्रान्तके जामखम्भालिया नामक ग्राममें ये रहते थे। लोयनका जन्म लोहार पञ्चाल जातिमें हुआ था। उसके माता-पिता गरीब थे। लाखाको कोई अहीर बतलाते हैं तो कोई काठी राजपूत। लोयनकी देहलतिका अत्यन्त मनोहर थी, उसके अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्य टपकता था। साधारण घरमें जन्म होनेपर भी लोयन क्षणभङ्गुर शरीरके सौन्दर्यको लेकर सदा गर्वोन्मत्त-सी रहती थी। लाखा भी बहुत सुन्दर तेजस्वी जवान था। उसका शरीर सुसंगठित तथा बलका भण्डार था। उससे सारा गाँव डरता था। यही कारण था कि दोनोंके आचरण अनैतिक तथा समाजके धर्मका नाश करनेवाले होनेपर भी कोई कुछ भी कहता नहीं था। इनकी अनैतिकता अबाध गतिसे चलती थी।

पता नहीं, भगवान्‌की कृपासे कब किसके जीवनमें क्या परिवर्तन हो जाता है। एक दिनकी बात है—चैतका महीना था। सैलनसी नामक प्रसिद्ध संत जामखम्भालिया ग्रामको अपनी चरणरजसे पवित्र करनेके लिये पधारे थे। महात्माके स्वागतके लिये दल-के-दल लोग चले जा रहे थे। लोगोंमें सात्त्विक उत्साह था। उधर ग्रामकी महिलाएँ जल भरनेके लिये घड़े ले-लेकर नदीकी ओर जा-आ रही थीं और जहाँ-तहाँ खड़ी रहकर महात्माकी चर्चा कर रही थीं। एक महिलाने कहा—'संत सैलनसी बहुत बड़े महात्मा हैं, वे अपनी चरणधूलिसे आज हमारे गाँवको पवित्र करेंगे। घरवालोंसे पूछकर हमलोग भी दर्शन करने जायँगी।' रूपवती लोयन भी घड़ा लिये जल भरने जा रही थी। स्त्रियोंको बात करते देखकर वह भी रुककर बातें सुनने लगी। एक स्त्रीने आँख मटकाते हुए व्यङ्गसे कहा—'क्यों लोयन बहिन! तुम महात्माका दर्शन करने नहीं आओगी?' लोयन इस कटाक्षको समझ गयी और बोली—'जाना हो तो कौन रोकता है?' दूसरीने कहा—'लाखा भाई—और कौन?' लोयनके हृदयमें यह वाक्य तीर-सा चुभ गया। जीवनमें प्रथम बार उसे अपनी चरित्रहीनताका ध्यान आया

और अपने इस आचरणके प्रति उसके मनमें घृणा पैदा हो गयी। भगवान्‌ने उस स्त्रीके वाक्यको निमित्त बनाकर लोयनके हृदयको अकस्मात् पलट दिया। लोयन बहुत सकुचा गयी। उसका सिर नीचा हो गया। तब एक वृद्धा माताने बड़ी शान्ति तथा स्नेहके साथ कहा—'बेटी लोयन! बुरा न मानना। देख बेटी! भगवान्‌ने तुझे रूप-सौन्दर्य देनेमें कुछ भी कसर नहीं रखखी है। तेरा अप्रतिम सौन्दर्य हमारे गौरवकी वस्तु है। तू इस ग्रामकी समस्त स्त्री-जातिकी शोभा है। बेटी! जवानी दीवानी होती है। जीवनका यह काल बड़ी ही सावचेतीका है—यह समय बहुत ही सँभलकर चलनेका है। भगवान्‌ने तुझे कैसी सुन्दर देह दी है, इसे बुरे मार्गमें बर्बाद न कर। जीवनको प्रभुके प्रेमकी ओर घुमा दे। तेरा बेड़ा पार हो जायगा। भगवान् बड़े ही दयालु हैं बेटी!'

लोयनके लोचन-पटल खुल गये। वह अपनी करनीको मन-ही-मन धिक्कारने लगी और अपने सिरपर जलका भरा घड़ा लिये सीधी संत-समाजकी ओर चल दी। उसे घर जानेकी सुधि ही नहीं रही।

संत-समाज चला आ रहा था। झाँझ, मृदङ्ग, करतालके साथ भगवन्नामकी मधुर ध्वनि अद्भुत आनन्द उत्पन्न कर रही थी। शङ्खनादके साथ जयनादकी गगनभेदी गर्जना हो रही थी। जलका घड़ा सिरपर लिये लोयन संत-समाजके समीप जा पहुँची। लोयनने एक संतसे पूछा—'संत सैलनसी किनका नाम है?' संतने कहा—'बहिन! आप कौन हैं, उनसे आपका क्या काम है?' लोयन बोली—'मुझे आज संत-चरण-रजरूपी गङ्गामें स्नान करके पावन होना और अपना यह अधम जीवन संत-चरणोंमें अर्पण करना है बाबा।' इस समय लोयन प्रभु-प्रेममें मग्न हो अपने-आपको भूल-सी गयी थी—मैं कहा हूँ, क्या कह रही हूँ—इसका उसे प्रायः भान नहीं था। संतने कहा—'देखो बहिन! सामने जो रथपर विराजित वृद्ध महात्मा हैं, वे ही संत सैलनसी हैं। तुम्हें जाना हो तो उनके पास जा सकती हो।' चारों ओर भीड़ जमा हो रही है। लोयन भीड़को चीरती हुई बेधड़क रथके समीप जा पहुँची। संत सैलनसी इस समय रथसे उतर रहे थे। उन्होंने एक तरुणी स्त्रीको आते देख स्वागतके लिये आये हुए गाँवके लोगोंसे पूछा कि 'यह बहिन कौन है?' गाँववाले लोयनको देखकर सकुचा गये

और महात्माजीके सामने लोयनके जीवनकी तसवीर आँकने लगे। इतनेमें लोयन वहाँ पहुँच गयी। संत-महात्माको किस तरह प्रणाम-नमस्कार करना चाहिये, इस बातका उसे पता नहीं था। संत सैलनसीने अपनी योगसिद्धिसे लोयनके मनकी उलझनको भलीभाँति समझ लिया और उन्होंने उसके उद्धारका निश्चय करके कहा—'आओ बेटी! तुम बाबाको जल पिलाने आयी हो न?' लोयनने बड़े ही करुणभावसे कहा—'बाबा! आप इस पापिनके हाथका जल पीयेंगे?' संतने मुक्तकण्ठसे कहा—'हाँ-हाँ, जरूर पीऊँगा। बेटी घड़ा भरकर जल पिलाये और मैं न पीऊँ! बेटी! घड़ा उतार और मुझे जल पिला। बेटी! तेरा नाम क्या है?' उसने बहुत धीरेसे सकुचाते हुए कहा—'लो-य-न, मैं लोहारकी लड़की हूँ बाबा।' 'वाह-वाह' तू तो हमारे महात्मा देवायनकी जातिकी है। संतने कहा।

लोयनने घड़ा उतारकर रख दिया और जीवनमें प्रथम बार संत-चरणमें अपना मस्तक रक्खा। महात्माको जल पिलाया। फिर उसने कहा—'इस अभागिन बेटीको पावन करो बाबा!' लोयनके लोचनोंसे अश्रु बह रहे थे, वाणी गद्गद थी, स्वरोंसे मानो मूर्तिमान् दीनता प्रकट हो रही थी। लोयनने फिर कहा—'बाबा! क्या आप इस अपराधिनीकी कुटियाको अपनी चरणरजसे पवित्र करेंगे?' संतने कहा—'बेटी! वहाँ आनेका अवकाश तो नहीं होगा। मेरे ठहरनेका जहाँ प्रबन्ध है, वहाँ तू जरूर आना बेटी!' लोयनने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'बाबा! वहाँ मैं कैसे जाऊँगी। मैं तो गाँवमें सभीकी दृष्टिमें गिरी हुई हूँ, तिरस्कारकी पात्र हूँ—बड़ी बदनाम हूँ बाबा मैं; मुझे देखते ही लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं।' संतने कहा—'बेटी! चिन्ता न कर। भगवान्‌के शरणापन्न होनेपर भी क्या कोई पापी रहता है? जीवनमें भूल किससे नहीं होती? बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंसे भूल हुई है। तू तो अज्ञान बालिका है। जब मनुष्य अपनी बुरी करनीपर पश्चात्ताप करता है, फिर वैसे कर्म न करनेकी प्रतिज्ञा करके भगवान्‌के चरणोंमें आ गिरता है, तब दयामय भगवान् उसके सारे पिछले दोषोंको भूल जाते हैं—क्षमा कर देते हैं। तू घबरा मत! वहाँ जरूर आना। भगवन्नाम-कीर्तनकी पुनीत गङ्गाधारा तुझे पावन कर देगी। तू स्वयं ही नहीं तरेगी, तरन-तारन बन जायगी।'

इस घटनाको देखकर समझदार अनुभवी ग्रामवासी बड़े प्रसन्न हो

रहे थे। वे कह रहे थे कि संत-कृपासे लोयनका जीवन बदल गया है। अन्तमें संतकी आज्ञा प्राप्तकर लोयन पुनः नदीसे घड़ा भरकर अपने घर पहुँची।

भगवान् भास्कर अस्ताचलको पधारे। संत-शिविरमें भगवान्की आरती होने लगी। घंटा, घड़ियाल, झाँझ, नगारे और शङ्खनादकी ध्वनिसे सारा ग्राम गूँज उठा। सब ओर सात्त्विक आनन्द छा गया। लोयन आज रूपगर्विता नहीं है, वह साध्वी है। सादे वेषमें है और नाम-कीर्तनमें महात्मा सैलनसीके चरणोंके समीप शान्तिसे बैठी हुई है। उद्दाम कीर्तन मधुर ध्वनिसे चल रहा है। मध्यरात्रिके पश्चात्, जो अधूरे प्रेमी थे, वे बिखरने लगे। सच्चे प्रेमी रह गये। लोयन पूर्ण भक्ति-श्रद्धाके साथ नाम-कीर्तन सुन रही है। वयोवृद्ध महात्मा सैलनसीने कृपा करके उसके मस्तकपर वरदहस्त रखकर कहा—'देख—भगवान्के सामने अखण्ड दीपक जल रहा है। इस समय उसकी लौ ऊपरको उठ रही है—उसकी ऊँची गति है। इसी प्रकार तू भी अपने मनको निरन्तर अति ऊँचेपर—भगवान्की ओर लगाये रख। और देख—यह ज्योति ऊँच-नीच, शत्रु-मित्र, अपने-पराये किसीका कुछ भी भेद-भाव न रखकर सबको समानभावसे प्रकाश दे रही है, ऐसे ही तू भी अपने हृदयमें समता रखना।'

लोयन बोली—'बाबा! मैं अबला जाति! .....' लोयनकी आवाजमें वेदना थी। इतनेमें देखा गया उसके शरीरपर एक विचित्र प्रकाश छा रहा है। महात्मा बोले—'बेटी! तू अबला नहीं है। तू तो बहुत-सी मार्ग भूली हुई सबलाओंको सत्यका मार्ग दिखाकर उसपर ले जानेवाली देवी है! तूने भगवान्की निर्भय शरण ग्रहण की है। सूरदास, तुलसीदास आदिको भगवान्के मार्गपर लगानेवाली तेरे जैसी देवियाँ ही थीं। आजसे तू भी भगवान्की संदेशवाहिका हो गयी।' गुरुने कहा—'बेटी, सत्यपर दृढ़ रहना। इस काया-मायाके मोहको मार देना। यह पतंगकी तरह हर क्षण बदलनेवाली है, इस मायाको दूरसे ही नमस्कार करना। 'मैं' तथा 'मेरे'के नशेमें सत्यको दूरसे ही नमस्कार करना। 'मैं' तथा 'मेरे'के नशेमें सत्यको मत भूल जाना। शरीरका यह सौन्दर्य तो बिजलीकी चमक-सा अनित्य है, इसका जरा भी गुमान मत करना। भगवान्के प्रेममें मस्त रहकर खूब नामकीर्तन करना-कराना।' लोयनने संतके सामने व्रत लेकर कहा—'भगवान्की तथा आपकी कृपासे

मैं ऐसा ही करूँगी।' तब संत बोले—'अच्छा बेटी! ले, पिताकी इस तुच्छ भेंटको स्वीकार कर।' इतना कहकर उन्होंने अपना भजन करनेका तानपूरा लोयनके हाथमें दे दिया और कहा—'बेटी! इसे लजाना नहीं; इसकी शोभा बढ़ाना, इसके सहारे नित्य भगवान्‌का भजन, नाम-कीर्तन करना-कराना। जगत् तेरा साथ देगा।' लोयनने काँपते हाथोंसे उसे स्वीकार करते हुए दीनतासे कहा—'बाबा! मैं इसके लायक नहीं हूँ......।' महात्मा बोले—'बेटी! इस कमजोरीको निकालकर दूर फेंक दे। अब तो इसे लेकर सोये हुए सौराष्ट्रको जगा। यह दिव्य गान करनेवाला तानपूरा तेरे हाथोंमें दिया गया है। इसको बजाती हुई जब नाम-कीर्तनमें तू नाम-मतवाली होकर झूमेगी, तब कितने नर-नारी तेरे साथ झूम उठेंगे और तेरे द्वारा नाम-ध्वनि सुनकर पावन हो जायँगे।'

वहाँपर बैठा संतसमाज महात्मा सैलनसीके प्रत्येक शब्दको बड़े ध्यानसे सुन रहा था और दूसरी ओर लोयनके रूपमें उसे जगदम्बाके दर्शन हो रहे थे। इसी समय महात्माने लोयनका ध्यान खींचकर बतलाया कि भगवान्‌के सिंहासनके सम्मुख जलती हुई अखण्ड ज्योतिके प्रकाशसे लोयनके अबतकके सारे पाप जलकर भस्म हो गये हैं। चौथे प्रहरमें कीर्तनकी पूर्णाहुति हुई। सब लोग अपने-अपने घर लौटे।

यों कुछ दिन जामखम्भालियाके लोगोंको कीर्तन-प्रवचनादिसे पावन करके महात्मा सैलनसी अन्यत्र जाने लगे। जाते समय उन्होंने लोयनसे कहा—'बेटी! अब मैं जा रहा हूँ। सावधान रहना। प्रभुके नामकी शोभा बढ़ाना।' लोयनने कहा—'बाबा, भगवान्‌की तथा आपकी कृपासे मैं प्रभुप्रेरणाके अनुसार ही चलूँगी।' संतकी बिदाईके समय लोयन रो पड़ी।

लोयनके माता-पिता लाखाके प्रेमपाशसे छुड़ानेमें असफल होनेके कारण लोयनको अकेली छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। घरमें लोयन अकेली ही रहती थी। संत सैलनसीके द्वारा प्राप्त तानपूरेको झनकारती हुई प्रभुगुण गाती लोयन प्रेमाश्रुओंसे तानपूराके तार-तारको भिगोने लगी।

इस ओर लाखा, जो अपने कामसे—चोरी करने-बाहर गया था, कुछ दिनों बाद लौट कर घर आया। वह लोयनसे मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर था। आँगनमें पैर रखते ही वह आश्चर्यमें डूब गया। लाखाने देखा—गोदमें तानपूरा और एक हाथमें मँजीरा लिये आँखोंसे सावन-भादों..... गङ्गा-

यमुनाकी धारा बहती लोयन भगवन्नाम-कीर्तनमें मस्त हुई झूम रही है। सैकड़ों कोयलोंके स्वरकी मधुरतासे भरे स्वर उसके कण्ठसे अनवरत निकल रहे हैं। अर्धविकसित कमल-कुसुमकी कलियोंके सदृश उसकी आँखोंकी पलकें ढली हुई हैं। प्रभु-प्रेमसे विगलित हृदयकी अमीरसधारा अश्रुबिन्दुओंके रूपमें निकलकर उसके कपोलोंपर बह रही है। काया भावसमाधिमें सहज ही झूम रही है। लाखा लोयनका यह सर्वथा नवीन स्वरूप देखकर निस्तब्ध रह गया। लोयनके मुखसे प्रभुनाम-प्रवाह अविच्छिन्नरूपसे बह रहा था। लाखा चुपचाप वहाँ बैठ गया। कुछ समय बाद जब लोयनकी भावसमाधि टूटी, उसकी आँखें खुलीं, तब उसने देखा—लाखा सामने बैठा है। लोयनने गम्भीर स्वरसे कहा—'पधारो लाखाजी, कब आये? ...... ' लोयनके इन निर्विकार शब्दोंमें लाखाको बड़ी फिकास दिखायी दी। लाखाने कहा—'लोयन! मैं अभी बाहरसे आया हूँ। पर अब तो तुम्हारे बिना मुझे जीवनमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता; जहाँ जाता हूँ, तुम्हारी यह सलोनी सूरत सदा हृदयमें नाचती रहती है, क्षणभर भी मैं तुम्हें भुला नहीं सकता। तुम यह साधुड़ीकी तरह हाथमें क्या लेकर क्या कर रही हो? यह सब ढोंग है?'

'लाखाजी! साधु होना सहज नहीं है। इस कुँआरी कायाको पराये हाथोंमें बेच देनेवाली मुझ-जैसी अधम नारीका साधु बन जाना कम आश्चर्यकी बात नहीं है, मैं हाथमें क्या-क्या लेकर क्या कर रही हूँ, यह तो आप अपनी आँखोंसे देख ही रहे हैं। मैं संतके आदेशानुसार भगवान्‌का गुणगान करके अपने जीवनके मल धो रही हूँ और जीवनका महँगा मूल्य चुका रही हूँ। यह ढोंग नहीं है।' गम्भीरतासे लोयनने कहा।

'तुम्हारी ये बातें मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगतीं। सफेद सादे कपड़े लपेटकर अपने सोने-से शरीरको तुम लजा रही हो—यह बड़ा अन्याय है। कहाँ गयीं तुम्हारी वह रसभरी बातें और रसभरा जीवन?' लाखाने कहा।

'लाखाजी! वह रस तो विषरस था, भगवान्‌की कृपासे वह सूख गया। मैं अभीतक तो प्रभुकी अमूल्य दैन—मानवदेहको कलङ्कित करती रही। अब इसे विशेष कलङ्कित करना प्रभुकृपाका तिरस्कार करना है। आओ—लाखाजी! अब प्रभुनाम कीर्तनमें मेरे हिस्सेदार बनो। अब हमारा दोनोंका जीवन प्रभु-कृपासे सनकर प्रभुनाममें रम जाय।'

'लोयन! तुम यह क्या पागलोंकी तरह बक रही हो। हृदयको खोलो और उससे प्यारकी धार बहाओ। लाखा यह सब नहीं देख-सुन सकता।'

लोयनने तानपूरा उठाया और गाने लगी—

लाखा लोयन अबला एम भणे।

कुंची म्हारा गुरुजीने हाथ—

गुरुजी आवे तो ताला उघड़े॥

अर्थात् 'लाखाजी! अबला लोयन यों कहती है कि चाभी मेरे गुरुजीके हाथमें है, गुरुजी आवें तभी यह ताला खुले।' इतने मीठे स्वरसे लोयनने यह गाया कि लाखा उसे सुनकर झूमने लगा। लोयनने फिर गाया—

काशी नगरने मारगे लख आवे, लख जाय।

साधुतणा संदेशडा पुलाने केम देखाय॥

लाखा लोयन अबला एम भणे॥

विषयान्ध लाखाकी अधीरता मर्यादासे पार हो चुकी थी। उसने दुःखभरे शब्दोंमें कहा—'लोयन! तुम जानती हो मैं तुम्हारे प्रेमका प्यासा हूँ। तुम्हारी ये सब बातें मेरी समझमें बिल्कुल नहीं आतीं; तुम अब इन बातोंको छोड़ दो। अब मैं नहीं सह सकता। अलग फेंको इस तूँबेके तानपूरेको। नहीं तो, मैं इसे अभी फोड़ डालूँगा।' मोहान्ध लाखाके शब्दोंको सुनकर लोयन हँसी और बोली—

'लाखाजी! आपको अभी इस तानपूरेके गुणोंका पता नहीं है। आपने सत्सङ्गसुधा-रसका पान नहीं किया, संतोंकी अमृतवाणी सुननेका आपको सुअवसर नहीं मिला है। प्रभुनामकी मधुरताका स्वाद नहीं आया है। इसीसे आप ऐसा कह रहे हैं। आओ, मेरे साथ नामकीर्तन करो—सत्सङ्गरूपी गङ्गामें डुबकी लगाओ। बहुत दिनों चोरी की, बहुत निर्दोष हरिनोंको मारा, गरीबोंके हृदयकी आह ली, मलमूत्रसे भरे हाड़-मांसके थैलेसे बहुत प्यार किया, नरकमें डूबे रहकर उसे स्वर्ग माना। अब चेत जाओ। मैं आपका सङ्ग नहीं छोड़ना चाहती, पर अब इस सङ्गका रूप दूसरा होगा। अब आप एक बार मेरे साथ इस रूपमें बैठिये और प्रभुकी आराधना कीजिये। कीर्तनमें प्रेमपूर्वक सुर-से-सुर मिलाकर प्रभुके मधुर नामोंका रस लीजिये। देखिये, कितना आनन्द प्राप्त होगा। आपका यह सुन्दर शरीर भगवत्-रसका

स्पर्श पाकर अन्तरकी कालिमा नष्ट हो जानेसे विशेष उज्ज्वल हो जायगा। लाखाजी, आइये सत्यके सरल सुन्दर मार्गपर प्रभुकी शरण ग्रहण कीजिये।'

लाखाने कहा—'लोयन! यह सब तुम किसके सामने बोल रही है, कुछ होश भी है?'

लोयन बोली—'हाँ, पूरा होश है। मैं उन्हीं लाखाजीके सामने बोल रही हूँ, जो मुझे बड़े प्रिय थे और आज भी प्रिय हैं पर दूसरे रूपमें। लाखाजी! आपकी वह पहलेवाली लोयन तो कभीकी मर चुकी। संत सैलनसीके तेजप्रकाशसे उसका वह पुराना शरीर तो जलकर भस्म हो चुका। यह तो संतकृपासे निर्मित नवीन जन्म है। आप उस लोयनको भूल जायँ और इस लोयनसे वैसी ही आशा सदाके लिये छोड़ दें। संसारकी असारता समझमें आ जाय तो बहुत उत्तम है, यदि दुर्भाग्यसे वैसा न हो तो आप अपनी विवाहिता पत्नीसे प्रेम करें। मुझे तो अपनी बहिन समझें।'

लोयनके इन वचनोंसे मानो लाखाके हृदयपर वज्रपात-सा हो गया। उसके सिरमें चक्कर आने लगे। पैरोंकी जमीन मानो नीचेसे खिसकने लगी, वह कामान्ध तो था ही, उसका काम प्रतिहित होकर क्रोध बन गया। उसने कहा—'जिसके लिये मैंने माता-पिता, घर-द्वार, पत्नी-जाति, लाज-मर्यादा—सब छोड़ी। जिसका गुलाम बनकर रहा। वही लोयन मुझे आज यह उपदेश दे रही है। लोयन! यह हठ छोड़ दो, नहीं तो घड़ीके छठे भागमें मैं इस रूपके गुमानको बर्बाद कर दूँगा और स्त्री-हत्याका पाप अपने सिर लूँगा।'

लोयनने बिना घबराये शान्तचित्तसे धैर्यके साथ कहा—'लाखाजी! इससे क्या होगा? आपने अनेक पाप किये हैं, उस पापके खातेमें एक पाप और बढ़ जायगा। यही सही।'

लाखाने कहा—'लोयन! तुम्हें मौतका भी भय नहीं है?'

लोयन बोली—'भय पापियोंको होता है। मृत्यु तो प्रभुका निमन्त्रण है जो आपको-मुझको—सभीको एक दिन मिलेगा ही—फिर चाहे वह आज आवे या कुछ वर्षों बाद! यह तो आनन्दका अवसर है। इस नश्वर जगत्‌को छोड़कर प्रभुके परम सुखमय पादारविन्दोंमें पहुँचानेका साधन तो आनन्दका विषय है। इसमें भयकी कौन-सी बात है। उस दिनका तो सदा स्वागत है।

इसमें भयकी कौन-सी बात है। उस दिनका तो सदा स्वागत है, जो हरिके

उनको हरिकी हुजूरीमें पहुँचा दे। ऐसी मृत्यु तो सदा ही अभिनन्दनीय है।'

लोयनकी इन बातोंने लाखाकी क्रोध-अग्निमें घीका काम किया, उसने बड़ी उग्रतासे कहा—'लोयन! मैं तुमसे प्यार करता हूँ, इससे अब भी तुम्हें अवसर देता हूँ—तुम समझ जाओ। नहीं तो—यह लाखा बड़ा निर्दयी है—देखते-देखते ही अपने मनकी करेगा और तुम्हें बर्बाद कर देगा। इसका बल तुमसे छिपा नहीं है लोयन! सारा गाँव काँपता है।'

लोयनने कुछ आगे बढ़कर हँसते हुए कहा—'लाखाजी! मनुष्यका बल तो क्षणोंका है और प्रभुके बलके सामने किसी भी गिनतीमें नहीं है। आप समझिये—मुझ-जैसी अज्ञान स्त्री भी जब इस सत्यको प्रत्यक्ष दीपककी तरह देख रही है, तब आपकी समझमें यह सत्य कैसे नहीं आता। हमलोग पापके पथमें बुरी तरहसे गिर गये थे। भगवान्‌ने कृपा करके उससे निकाला है। अब तो उस मार्गकी चर्चा ही नहीं होनी चाहिये।'

लाखाके काम-कलुषित हृदयपर जैसे हथौड़ेकी करारी चोट लगी। वह अपना आपा भूल गया और विकारका शिकार बनकर उसने लोयनकी फूल-जैसी देहको अपनी भुजाओंमें बाँध लिया। लोयनने परिस्थिति समझकर शान्तिसे कहा—'लाखाजी! आप भूल रहे हैं। अकेली असहाय अबलाको अपने बाहुबलसे पराजित कर देनेमें कौन-सी बहादुरी है। बहादुरी तो मनके दोषोंको मारनेमें है। आप शूरवीर हैं तो अपने मनको जीतकर मर्दानगी बताइये। मेरी रक्षा तो, जिनसे सबको बल मिलता है, जो बलके आदिस्रोत हैं, वे सर्वबलशाली प्रभु ही करेंगे—प्रभु! ब—चा—ओ—' यों कहते-कहते लोयनका कण्ठ रुक गया। वासनाके वश हुए लाखाको तो इस समय कुछ भी होश नहीं था। उसने लोयनके शब्दोंपर जरा भी ध्यान नहीं दिया, परंतु यह क्या? लाखाके सारे शरीरमें उसी क्षण अग्निकी लहर दौड़ गयी। उसका रोम-रोम जलने लगा। उसने घबराकर लोयनको छोड़ दिया और मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसके बाहुपाशसे छूटते ही लोयनने तुरंत घरमें घुसकर दरवाजा बंद कर लिया।

मूर्छासे जागनेपर लाखाने देखा तो अङ्ग-अङ्गमें कोढ़ फूट रहा है। वह दुखी होकर घर लौट गया और बिछौनेपर पड़ रहा!

इसी रोगशय्यापर पड़े बारह वर्ष बीत गये। लोकचर्चा भी विस्मृत

हो गयी। इधर लोयन अब सामान्य लोहारकी सुन्दरी लड़की नहीं रही। वह तो प्रभु-कृपासे सौराष्ट्रके संत समाजमें आदरणीय हो गयी। महात्मा सैलनसी देशाटन करते-करते पुनः जामखम्भालिया गाँवमें आये। पिता-पुत्रीका हृदयस्पर्शी मिलन हुआ। संतहृदया लोयनने निर्लिप्त भावसे कहा—'बाबा! लाखा बारह वर्षसे कुष्ठसे पीड़ित है, उसका उद्धार होना चाहिये। वस्तुतः वह तो बेचारा निर्दोष था। दोषी तो यह आपकी पुत्री है। इसीने अपने रूपकी मोहिनी डालकर उसे पागल बनाया और पथभ्रष्ट किया था। बेचारे पुरुष स्त्रियोंके सौन्दर्यमें जो मीठा विष भरा रहता है, उसे सहज ही नहीं देख पाते और मोहमें फँसकर अपनेको पतनके गर्तमें गिरा देते हैं! अब अपनी इस पुत्रीपर कृपा कर उसको कष्टसे उबारिये और ऐसा कीजिये जिसमें उसका जीवन प्रभु-भजनमय बन जाय।' संतने लोयनकी प्रार्थना स्वीकार की और कहा—'लोयन! ईश्वरेच्छा, लाखा अच्छा हो जायगा। लाखा ही क्यों, मिथ्या रूपसागरमें डूबा हुआ प्रत्येक पथभ्रष्ट मनुष्य यदि भगवन्नाम-कीर्तन-भजनका अवलम्बन करके प्रभुके शरण होता है तो वह अपने कुकर्मोंका अन्त करके भगवान्‌का जन बन जाता है।'

बारह वर्षके बाद आज अचानक लोयन लाखाके घर आयी। यह देखकर लाखाके घरवालोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। लोयन आज उच्चस्तरकी संत है, सभी घरवाले लोयनके पधारनेसे अपनेको धन्य मानने लगे।

लाखा महारोगका कष्ट भोगता हुआ एक चारपाईपर पड़ा था। लोयनने समीप जाकर कहा—'लाखाजी! बहुत कष्ट हो रहा है।' परिचित आवाज सुनकर लाखाने आँखें ऊँची करके देखा तो लोयन सामने खड़ी है, पुरानी बातें याद आनेसे लाखाकी आँखोंमें आँसू छा गये। लाखाने भरे कण्ठसे कहा—'देवी लोयन! तुम साध्वी हो। मैं बड़ा नीच हूँ। तुम्हारे हित और सत्यसे भरे वचनोंका अनादर करके मैंने तुम्हें सताया, उसीका फल भोग रहा हूँ। ...... अब तो हद हो गयी। देवी! दुखीपर दया करो। इस महारोगके महाकष्टसे मुझे छुटकारा मिले।'

लोयनने नम्रता और स्नेहभरे शब्दोंमें कहा—'लाखाजी! प्रभु बड़े दयालु हैं, वे पुरानी बातोंको याद नहीं करते, वे तो वर्तमान हृदयको देखते हैं, आप उनके शरणापन्न हो जाइये। प्रभुकी कृपासे क्या नहीं हो सकता।

मैं तो आज आपको एक शुभ समाचार सुनाने आयी हूँ।' इतना कहकर लोयन लाखाकी दुर्गन्धभरी चारपाईके पास नीचे बैठ गयी और मातृभावसे लाखाके मस्तकपर हाथ रखकर बोली—'लाखाजी! संत श्रीसैलनसी महाराज पधारे हैं। आप उनके कीर्तनमें आयेंगे न?' लाखाने कहा—'मेरे बड़े ही भाग्य हैं, मुझ अभागेको ऐसे महात्माके दर्शन होंगे। तुमने बड़ी कृपा की। मैं अवश्य आऊँगा।' लोयनने कहा—'संतकी कृपासे आपका निश्चय कल्याण होगा। भगवन्नाम-कीर्तनमें अवश्य आइयेगा। मैं आपके लिये स्थानकी व्यवस्था कर रक्खूँगी।' चलते-चलते लोयनने लाखाके घरवालोंसे भी कह दिया कि वे भी आवें और लाखाजीको अवश्य लावें।

भगवन्नाम-कीर्तनमें ठीक समयपर लाखा पहुँचा। कीर्तन आरम्भ हुआ। चार प्रहर रात्रि कीर्तन सुनने तथा करनेके बाद लाखाजीको संतने अपने पास बुलाकर स्नेहसे कहा—'लाखा! शारीरिक पशुबलसे सत्यका बल कितना प्रबल होता है, यह तुमने प्रत्यक्ष देख लिया। बेटा! आजसे सत्यपर चलना। असत्य, अन्याय, अनाचार कभी न करना। भगवान्‌का चरणामृतपान करके पावन हो जाओ।' इतना कहकर महात्मा सैलनसीने लाखाके शरीरपर भगवन्नाम-मन्त्रका जप करते-करते अपना वरद हस्त फिराया और चरणामृत-पान कराया। देखते-ही-देखते लाखाका महारोग ऐसे मिट गया—मानो था ही नहीं। शरीर दिव्य कान्तिसे दीप्त हो उठा। लाखा अपनेको पूर्ण स्वस्थ देखकर महात्माके पावन चरणोंपर गिर पड़े, फिर उन्होंने लोयनके चरणोंमें प्रणाम किया। तथा समस्त संतसमाजको प्रणाम करके अपने जीवनको प्रभुके भजनमें लगाकर प्रभुपादपद्मोंकी शरण प्राप्त कर ली। लाखा-लोयन धन्य हो गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

(कल्याण वर्ष २९, पृष्ठ ११७८)

******

भगवान्‌की कृपा

(लेखक—श्रीशम्भूनाथजी चतुर्वेदी)

यह संसार एक विलक्षण मायाजाल है और हमलोग प्रायः सभी उस पक्षीके समान हैं जो चारेकी लालचमें जालके समीप जाता है और

उसीमें फँस जाता है। फिर वह जितना ही उससे छूटनेका प्रयत्न करता है, उतना ही अधिकाधिक फँसता जाता है। भगवान् उसे कर्मानुसार घुमाया करते हैं, परंतु वे हैं बड़े दयालु। जो उनका भजन करते हैं उनको प्रेममार्गसे और जो मदान्ध होकर विपरीताचरण करते हैं उनको दण्ड देकर पुनः सन्मार्गपर ले आते हैं। इतना होनेपर भी मनुष्य भगवत्कृपाका आश्रय न लेकर दुःखमय मिथ्यासुख विषयोंको ही अपनाते हैं, और बार-बार एक सङ्कटसे दूसरे सङ्कटमें पड़ते रहते हैं। भगवान्‌की दयालुताकी ओर देखकर जो परम सुखरूप भगवान्‌का आश्रय लेते हैं, वे ही धन्यजीवन हैं।

कुछ समय पहलेकी बात है—काशीमें एक अत्यन्त निर्धन मनुष्य रहता था। उसके पास धन तो दूर रहा, खानेतकको नहीं था। जो मिलता वही खा लेता, जहाँ जगह मिलती वहीं सो रहता। पर उसका भगवान्‌की प्रार्थनामें विश्वास था। वह नित्य गङ्गास्नान करने जाता और गङ्गाकी धवल धाराको देखकर प्रमुदित होता। वहाँ लोगोंको दान-पुण्य करते देखता तब मन-ही-मन कहता—'भगवन्! मेरे पास धन होता तो मैं भी इसी प्रकार दीन-दुखियोंकी सहायता करता।' दूसरे ही क्षण उसे क्षोभ होता देवपर कि 'या तो मुझे इतना विशाल हृदय न देना था और यदि हृदय दिया तो उसके साथ धन भी देना था। जिससे वह अपनी अभिलाषाओंको पूर्ण कर सकता।'

अन्तमें करुणामय ईश्वरको उसपर दया आ गयी और उन्होंने उसकी मनोकामना पूर्ण की। एक दिन जब कि वह गङ्गास्नान करके लौट रहा था तो उसे अपने सम्मुख कोई चमकती हुई वस्तु दिखलायी पड़ी। उसने उसे उठा लिया। वह एक बहुमूल्य रत्न था। उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उसे विचार हुआ कि यह सब कृपालु ईश्वरकी ही कृपा है। उसने अपने जीवनमें कभी ऐसा रत्न नहीं देखा था और न कभी स्वप्नमें भी उसे ऐसी कल्पना हुई थी कि उसे एकाएक ऐसा रत्न प्राप्त हो जायगा। वह ईश्वरको धन्यवाद देता हुआ कृतज्ञ हृदयसे चल दिया।

उसने रत्नको ले जाकर एक जौहरीको दिखलाया। जौहरीकी आँखें रत्नकी चमकसे चौंधिया गयीं। उसने रत्न बेच देनेके लिये उससे कहा। उधर वह मनुष्य भी आवश्यकतामें था। दोनोंमें सौदा पट गया। और जौहरीने

पाँच सौ रुपये उसके हाथमें दे दिये। उसने उन रुपयोंसे व्यापार करनेका विचार किया। एक छोटी-सी दुकान ले ली और व्यापार प्रारम्भ किया। भगवान्‌की कृपासे उसे व्यापारमें सफलता मिली और शनैःशनै वह उन्नति करने लगा। अब वह पहलेका निर्धन व्यक्ति न था। उसके पास एक बहुत बड़ी कोठी थी और वह सेठ घासीरामके नामसे समस्त काशीमें विख्यात था।

कुछ दिनों पश्चात् उसने अपना विवाह कर लिया। विवाह बहुत धूम-धामसे हुआ। दिल खोलकर रुपया व्यय किया गया। ऐसा विवाह काशीमें बहुत दिनोंसे नहीं हुआ था। लोग दाँतोंतले अँगुली दबाते थे। अब सेठजी सब प्रकारसे सुखी हो गये थे। उन्हें किसी बातका अभाव न था।

शनैः-शनैः उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए। उन्हें सब तरहसे सम्मान-सत्कार प्राप्त था।

अब सेठसाहबकी प्रसन्नताका ठिकाना न था। पर इस धनका मद उनमें आने लगा। आखिर वे उसके नशेमें इतने चूर हुए कि ईश्वरकी कृपाकी बात तो दूर, ईश्वरको बिल्कुल भूल गये। दिन-रात गुलछर्रे उड़ने लगे। प्रमादकी सरितामें बाढ़ आ गयी। सत्कर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। साधु-संन्यासी या भक्तके नामसे ही उन्हें घृणा-सी हो गयी। कोई साधु या भिखारी आता तो उसे दरवाजेपर फटकनेतक न दिया जाता। चौकीदारोंको यह आज्ञा थी कि वे किसी ऐसेको दरवाजेपर भी न आने दें।

भगवान्‌ने देखा कि उनका भक्त पथभ्रष्ट होकर अब दिनोंदिन भोग-विलासके नरकमें निमग्न होता जाता है, तब उन्होंने उसकी आँखें खोलनी चाहीं। उसे एक बार सचेत करना चाहा और उसके सामनेसे अज्ञानका पर्दा हटाना चाहा।

एक दिन सेठसाहबके यहाँ भगवान् एक साधुका रूप धरकर गये। दरवाजेपर पहुँचे तो उन्हें चौकीदारने डाँटा-फटकारा। साधुने कहा कि 'मैं सेठसाहबसे मिलना चाहता हूँ।' इसपर दरवानने उन्हें गालियाँ दीं और धक्के देकर बाहर निकालना चाहा, पर साधुके तेजसे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। अब साधु बिना किसी रोक-टोकके अंदर चले गये। वहाँ जाकर उसने देखा कि सेठसाहब पलंगपर पड़े हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं। साधुने सेठसे

कहा—'भाई! सीताराम!' यह सुन सेठसाहबने ऊपर आँख उठाकर देखा तो उनके सम्मुख एक साधु खड़े थे। सेठसाहब अपनी आँखें लाल करके बोले—'तुम यहाँ कैसे चले आये! सीताराम सीताराम चिल्लाकर मेरी नाकमें दम कर दी। जल्दी भाग चलो, नहीं तो अभी धक्के देकर निकलवा दूँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने चौकीदारको पुकारा; परंतु वह तो पहलेसे ही मूर्च्छित पड़ा था। जब साधुने सेठमें इतना अभिमान देखा और इस प्रकार तिरस्कार करते पाया, तब उन्होंने कहा—'अरे राम! राम! तुम्हें सीतारामके नामसे इतनी घृणा हो गयी है? तो लो मैं स्वयं ही बाहर जाता हूँ।' यों कहकर वे बाहर चले गये।

दूसरे दिन सेठसाहब गङ्गास्नानको गये और वहाँ जाकर उन्होंने अपने वस्त्रादि उतार दिये तथा स्नान करने गये। इतनी देरमें भगवान् स्वयं ठीक उन्हीं सेठजीका रूप धारणकर आये और उन्होंने मोटर ड्राइवरसे घर चलनेको कहा। ड्राइवरने पूछा—'सेठजी! आज आप बहुत जल्दी स्नान कर आये?' सेठजीने उत्तर दिया—'आज मुझे बहुत जल्दी हुंडीका भुगतान देना है। इसीलिये जल्दी चल रहा हूँ।' ऐसा कहकर वे मोटरमें बैठ गये और थोड़ी ही देरमें घर आ पहुँचे।

उनके पुत्रोंने देखा कि आज पिताजी बहुत शीघ्र लौट आये तो उन्होंने पूछा कि 'आज आप इतनी जल्दी कैसे लौट आये?' सेठजीने कहा कि 'आज गङ्गाजीपर एक ऐसा बहुरूपिया आया है जो न जाने कितने लोगोंको ठग चुका है। जब मैं पहुँचा, तब मैंने देखा कि वह बिल्कुल मेरे-जैसा ही रूप बनाये हुए है। मैं उसे देखकर आश्चर्यमें पड़ गया और मैंने यह विचार किया कि कहीं यह घर जाकर तुमलोगोंको ठग न ले। इसीलिये मैं शीघ्र चला आया।' यह सुनकर उनके पुत्रोंने कहा—'पिताजी! आपने बहुत अच्छा किया जो जल्दी लौट आये। नहीं तो, कहीं वह आकर हमें ठग ले जाता।'

इधर सेठ घीसाराम गङ्गा-स्नान करके लौटे, तब देखा कि उनकी मोटर लापता है। उन्होंने चारों ओर नजर दौड़ायी किंतु उन्हें मोटर कहीं भी न दिखायी दी। तब उन्होंने यह विचार किया कि कदाचित् लड़कोंके स्कूलमें देर हो जानेके कारण ड्राइवर मोटर ले गया हो। ऐसा विचारकर

वे ताँगेमें बैठकर घर पहुँचे। वहाँ तो लोगोंको पहलेसे ही ज्ञात था। चारों तरफ लोगोंने शोर मचाना प्रारम्भ किया कि 'देखो-देखो वह बहुरुपिया आ गया।' सेठसाहबके पुत्रोंने जूतोंसे उसके सिरकी खूब मरम्मत की। सेठजी रोने-चिल्लाने लगे और कहने लगे—'अरे! मैं तुम्हारा पिता हूँ और तुमलोग मुझे जूतोंसे मार रहे हो।' यह सुनकर उनके लड़कोंने उनकी और भी पूजा की। लड़कोंने कहा कि 'हमारे पिताजी तो ऊपर बैठे हैं।' यह सुनकर तो सेठसाहब किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। इतनेमें वे सेठरूपी भगवान् नीचे उतर आये। जब सेठने अपने ही समान दूसरे सेठको देखा, तब उनके होश-हवाश हवा हो गये!

अन्तमें उन्होंने न्यायाधीशके यहाँ जाकर यह प्रार्थना-पत्र भेजा कि एक ऐसा बहुरुपिया आया है जिसने उनकी-जैसी ही आकृति बनाकर उनके लड़कोंको ठग लिया है और उनकी सम्पत्तिपर अधिकार कर लिया है। न्यायाधीशने यह सुना तो वे भी बड़े असमंजसमें पड़ गये। उन्होंने दोनोंको उपस्थित होनेकी आज्ञा दी।

जब दोनों उपस्थित हुए, तब न्यायाधीश भी चक्करमें पड़ गये। उन्होंने दोनोंकी आकृतिमें तनिक भी अन्तर न देखा। अन्तमें न्यायाधीशने कहा कि 'जो बहीखातेके सब हिसाबोंको बतला देगा, वही वास्तविक सेठ माना जायगा।' तब बहीखाते मँगवाये गये और दोनोंसे पूछा गया। सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ सेठरूपधारी भगवान्‌ने सब बातें ठीक-ठीक बतला दीं। सेठ घीसारामको सब खातोंकी रकमें याद नहीं थीं। वे एक आधी बात ही बतला सके। तब न्यायाधीशने कहा कि 'मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ कि तुमने बहुत सफल बहुरुपियेका रूप धारण किया है। पर तुमने सेठ घीसारामके लड़कोंको ठगनेकी चेष्टा करके अपराध भी किया है, इसलिये मैं तुम्हें पुरस्कार और दण्ड दोनों दूँगा। दण्ड यह दूँगा कि तुम्हें सारे शहरमें काला मुख करके गदहेपर चढ़ाकर घुमाऊँगा और पुरस्कार यह दूँगा कि तुम्हें जेल नहीं भेजूँगा।' यह सुनकर सेठजीको बहुत दुःख हुआ; किंतु वे विवश थे, कुछ कह न सके।

दूसरे दिन सेठरूपधारी भगवान् पुनः गङ्गा-स्नान करने गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सेठजी ठंडके मारे ठिठुरे जा रहे हैं। जब सेठजीने उनको

देखी, तब उन्होंने भगवान्के चरणोंपर पड़कर बहुत प्रार्थना की, बहुत रोये-गिड़गिड़ाये। अब भगवान्को भी उनपर दया आ गयी। उन्होंने कहा कि 'जाओ, घर जाकर सुख भोगो। मुझे तुम्हारी सम्पत्ति और ऐश्वर्यसे कुछ प्रयोजन नहीं है, पर तुम्हें अपनी स्थितिको याद रखकर सदा विनयशील रहना चाहिये। धनके मदमें भगवान्को भूलना नहीं चाहिये। धन तो भगवान्का है, वह केवल जन-सेवाके लिये तुमको मिला है, उससे दुखी जनरूपी भगवान्की सेवा करो और संसारमें स्वयं वैसे ही निर्लिप्त रहो जैसे जलसे कमल रहता है। कभी ममता, मोह और अहंकार मत करना। और ईश्वरको कभी न भूलना।' यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

आज सेठ चौसाराम गङ्गा-स्नान करके घर पहुँचे तो उनका नशा उतर चुका था, अब वे बिल्कुल बदले हुए थे। उन्होंने भगवान्का एक मन्दिर बनवाया। अब सम्पत्तिका गरीबोंकी निष्काम सेवामें सदुपयोग होने लगा और वे अपना अधिकतर समय ईश्वर-आराधनामें ही बिताने लगे।

(कल्याण वर्ष २९, पृष्ठ १२५)

******

प्रार्थनासे रोगनाश

(लेखक—श्रीमती सी०ई०एच०)

हमारे बच्चेको बहुत छोटे ही अवस्थामें वातज्वर हो गया था। इसके फलस्वरूप उसके हृदयमें मरमराहट उत्पन्न हो गयी और दूसरे बच्चोंकी तरह उसमें दृढ़ता एवं स्फूर्ति नहीं रही। हमलोग इस विषयमें सदा सावधान रहते कि उसे पर्याप्त मात्रामें विश्राम मिले और उसे बराबर डाक्टरके पास परीक्षाके लिये ले जाते। डाक्टरका कहना था कि बड़े होनेपर उसकी ये शिकायतें जाती रहेंगी। इससे हमलोगोंको कोई चिन्ता नहीं थी।

लगभग एक वर्ष पूर्व गत जनवरीमें हृदयके कई अंतरचित्र (cardiography) लेनेके उपरान्त डाक्टरोंने मेरे पतिको और मुझको एकान्तमें बुलाकर कहा कि 'तुम्हारे लड़केकी दशा बहुत शोचनीय हो गयी है' और वास्तवमें उसकी दशा कुछ दिनोंसे बराबर गिरती जा रही थी। हृत्कपाट भयानक रूपसे क्षत हो गया था और स्वयं हृदयपर ही एक ओर प्रबल

शोथके लक्षण प्रकट हो रहे थे। डाक्टर दयालु थे। दशा सुधर जायगी, इस आशाके पीछे वह अपनी आशंकाको कुछ दिनोंतक छिपाते रहे; किंतु अब उन्हें प्रकट ही करना पड़ा; क्योंकि यह स्पष्ट कर देना था कि अपने जीवनके शेष इने-गिने दिनोंमें बच्चा पंगुहृदय बनकर रहेगा और उसके लिये नियन्त्रणकी आवश्यकता है।

हमलोगोंने इस भयानक निर्णयको स्वीकार करनेका सामर्थ्य प्राप्त होनेके लिये प्रार्थना की। मेरी चाचीने प्रार्थना की कि कोई चमत्कार हो जाय और उन्होंने युनिटिके प्रार्थना-विभागसे भी उनके साथ प्रार्थना करनेका अनुरोध किया। हमलोगोंको चमत्कारोंमें विश्वास नहीं था।

उस भयानक दिनके नौ महीने बाद हमलोग फिर डाक्टरके कमरेमें बच्चेकी नयी जाँचका फल जाननेके लिये उपस्थित हुए। डाक्टर साहब कमरेमें टहल रहे थे और अत्यन्त गम्भीर दिखायी दे रहे थे। वे हमलोगोंकी ओर घूमकर कहने लगे—'मैं जो कुछ कहने जा रहा हूँ उसका कोई तर्कसम्मत कारण तो मुझे दिखायी देता नहीं, इसलिये कैसे कहूँ, यह बात समझमें नहीं आती। तुम्हारे लड़केका हृदय बिल्कुल ठीक है। हृत्कपाटका क्षय अपने-आप ठीक नहीं होता; किंतु यहाँ तो असम्भव सम्भव हो गया है। न तो शोथ है, न मरमराहट और न किसी अन्य प्रकारका कोई विकार। नाना प्रकारके यन्त्रोंसे देखनेपर भी कोई त्रुटि नहीं पकड़में आती। मैं इसे समझ तो नहीं पाता किंतु भगवान्‌को धन्यवाद देता हूँ कि ऐसा हो गया है।' उन्होंने हमसे फिर कहा—'आपने प्रार्थना की है क्या? ऐसा व्यक्तिगत प्रश्न पूछनेके लिये मुझे क्षमा कीजियेगा; किंतु इस चमत्कारका कारण केवल प्रार्थना ही समझमें आता है। हम डाक्टरोंको ऐसी बात बहुधा देखनेमें आती है।'

अब नौ महीने और बीत चुके हैं। हमारा लड़का पूर्ण स्वस्थ है। मैं दिन-रात भगवान्‌को उनकी कृपालुताके लिये धन्यवाद देती रहती हूँ और अब ईश्वरीय चमत्कारोंमें विश्वास करने लगी हूँ।

(कल्याण वर्ष २६, पृष्ठ ९९१)

[२]

(ले०—रेव० एन० जे० शार्लैण्ड)

लंदनके हाइडपार्क कार्नरमें स्थित सेंट जार्ज अस्पतालमें भर्ती हुए एक सिपाहीकी सेवाका काम मेरी एक नर्स मित्रको मिला था। सिपाहीकी छातीमें चोट लगी थी और उसे एक कोनेमें तकियेके सहारे लिटाकर उसके दोनों पैरोंको लकड़ीके तख्तोंसे बाँधकर पृथ्वीसे ऊपर उठाकर रक्खा गया था। वह केवल इसी अवस्थामें साँस ले सकता था। धीरे-धीरे उसकी दशा बिगड़ती गयी और नर्ससे कहा गया कि सम्भवतः वह आज रातको मर जायगा और अगर ऐसा होना ही है तो जितनी जल्दी हो जाय उतना ही अच्छा है। इससे सबकी आफत टलेगी। प्रधान परिचारिकाने कड़ा आदेश दिया कि 'इस रोगीको एक क्षणके लिये भी अकेला न छोड़ा जाय। वह कुछ भी खाने-पीनेकी इच्छा प्रकट करे वह पूरी की जाय; क्योंकि खानेसे मृत्यु शीघ्र आ जायगी।' ऐसा सुन्दर और तरुण पुरुष मरने जा रहा है, इस बातसे उस नर्सको बहुत दुःख हुआ। उसको इतना क्लेश हुआ कि मध्यरात्रिमें आज्ञाका उल्लङ्घन करके और कुछ मिनटोंके लिये उसे अकेले छोड़कर वह पासके एक कमरेमें चली गयी तथा वहाँ उसने भगवान्‌से उसे जीवनदान दे देनेके लिये प्रार्थना की। उसे विश्वास था कि उसकी प्रार्थना स्वीकृत होगी, यद्यपि काम असम्भव दीख रहा था। लौटकर आनेपर रोगीने नीबू डालकर बार्लीका जल पीनेको माँगा। इसे तैयार करनेके लिये उसे रोगीको कुछ समयके लिये छोड़कर जाना पड़ा। जब वह गिलास लेकर लौटी, तब देखा रोगी तबतक जीवित था। उसे पी लेनेके बाद उसने फिर माँगा और उसे तुरंत ही दिया गया। प्रातःकाल प्रधान परिचारिका एवं डाक्टरोंको उसे जीवित एवं अप्रतीक्षितरूपसे सुधरते देखकर महान आश्चर्य हुआ। कुछ ही सप्ताह बाद वह शय्यापर लेटने लायक हो गया और धीरे-धीरे उसके घायल फेफड़े ठीक हो गये। कुछ सप्ताह बाद उसे समुद्रतटस्थित एक विश्रामगृहमें भेज दिया गया। जिस दिन उसने अस्पताल छोड़ा, नर्सने उससे कहा, 'शायद हमलोग फिर कभी नहीं मिलेंगे, इसलिये मैं एक बात बताना चाहती हूँ जो उस रातको हुई थी, जिसे हमलोग तुम्हारे जीवनकी अन्तिम रात्रि समझ रहे थे।' सिपाहीने कहा—'मैं जानता हूँ तुम

क्या कहने जा रही हो। तुम यही कहने जा रही हो कि जब तुम मुझे कुछ मिनटोंके लिये छोड़ गयी, तब तुमने जाकर मेरे अच्छे हो जानेके लिये भगवान्से प्रार्थना की। यद्यपि तुमने मुझसे नहीं बताया कि तुम मेरे लिये क्या करने जा रही हो, पर मैं जान गया कि तुम प्रार्थना कर रही थी। मुझे तुम्हारी प्रार्थनासे प्राप्त शक्तिका अनुभव हुआ; मैंने जाना कि मुझे जीवनदान देनेकी तुम्हारी अर्जीको भगवान्ने स्वीकार कर लिया है।' नर्सने उत्तर दिया—'हाँ, मैं यही कहना चाहती थी और मुझे हर्ष है कि तुम इस बातको मानते हो कि भगवान्ने प्रार्थनाके उत्तरमें तुम्हें जीवनदान दिया।'

चिकित्सा-शास्त्रकी कुशलता सीमाबद्ध है परंतु उस महान् चिकित्सककी शक्तियोंकी कोई सीमा नहीं है। उसके लिये कोई रोगी असाध्य नहीं है।

(कैलिफोर्निया (अमेरिका) से प्रकाशित 'यूनिटि' में ये घटनायें छपी हैं)

******

हिमालयके एक भक्त-योगीका पुराना वृत्तान्त

[श्रीकाले बाबा]

(लेखक—श्री 'मायेश' भारद्वाज)

यात्रीलोग श्रीबदरीनारायण तथा केदारनाथके दर्शन कर जाते हैं। कोई कैलाश पर्वतको भी देख आते हैं। सैर-सपाटेवाले साहब लोग हरिनोंका शिकार करते हैं, हवा खाते हैं, फोटो खींचते हैं और मौज-मजा करते हैं। अपने राम हिमालयमें रहते हैं, किंतु वहाँके अद्भुत चमत्कारी दिव्य दृश्योंको देखनेकी धुनमें ही व्यस्त रहते हैं। नर-नारायण पर्वत, महामृत्युञ्जय पर्वत, द्रोणागिरि पर्वत, नन्दा पर्वत, कुमारी पर्वत, इन्द्रकील पर्वत, खेंटा, छाँती आदि उत्तराखण्डमें विशेष दिव्य पर्वत हैं। इनमें विशेष भ्रमण करनेसे समय-समयपर अप्सराएँ, यक्ष तथा गन्धर्व मिल ही जाते हैं। पहाड़ी भाषामें यक्षिणीको 'एड़ी' अप्सराको 'आँछरी' यक्षोंको 'जौंठिया' गन्धर्वोंको 'चनोणिया' बोलते हैं। बहुत पहाड़ियोंको ये मिलते रहते हैं जो उन पर्वतोंमें जाते हैं। इनके गायन, वाद्य और नृत्यका भी अद्भुत आनन्द होता है। आजका विषय है—हिमालयके एक भक्तयोगी श्रीकाले बाबा!

ये महात्मा बहुधा महामृत्युञ्जय पर्वतपर मिलते थे। ग्रामोंमें पहले

कभी आ जाते थे, कोई याज्ञिक ब्राह्मण भोजन करा दे तो पा लेते थे; किंतु अब करीब चालीस पचास वर्षोंसे ग्रामोंमें नहीं आये हैं। इनकी आयु करीब चार सौ वर्षकी है, यह इनके साथके वार्तालापसे मालूम हुआ था। ये अपने शरीरको भी बदल लेते हैं; कभी बाघ, कभी अजगर, कभी मृग, कभी गरुड़ पक्षी, कभी रीछके रूपमें रहते हैं। पचास वर्ष पहले तो इनको लोग जानते थे तथा इनकी चर्चा करते थे, किंतु अब इनको भूल-जैसे गये हैं। वे मानव समाजसे सम्पर्क नहीं रखते हैं। करीब पंद्रह वर्षसे इधर किसीको उनका मिलन या प्रकट अनुभव नहीं हुआ है।

इनके दर्शन लेखकको सन् १९२८ ई० के ज्येष्ठ मासमें हुए थे। उनके साथ जो वार्तालाप हुआ था, उसे उसी समय अपने स्थानपर आकर इटावाके 'ब्राह्मणसर्वस्व' में प्रकाशित करवाया गया था।

उस समय लेखककी आयु तीस वर्षकी थी। देशोद्धारका वर्तमान साहित्य पढ़कर तथा कई नास्तिक दर्शनोंके स्वाध्यायके कारण भगवान्‌के प्रति यह भाव हो गया था कि 'यह भी एक कल्पनामात्र है।' संस्कृत साहित्यका स्वाध्याय बहुत होते हुए भी, न मालूम किस दुर्दैवके कारण यह भावना प्रबल हो गयी थी।

मेरे वार्तालापमें नास्तिकताकी गन्ध देखकर मेरे पूज्य पिताजीने मुझे महामृत्युञ्जय पर्वतमें शिवपूजा करनेकी आज्ञा दी, साथ ही यह भी कहा कि 'वहाँ काले बाबाके दर्शन हो जाया करते हैं। वे मिलें तो अहोभाग्य!'

महामृत्युञ्जय पर्वतमें स्वयम्भू शिवलिङ्ग हैं। उन्हें दशम केदार भी कहते हैं। कर्णप्रयागसे नारायणबगड़ जाकर तीन मील पर्वतके ऊपर चढ़कर यह स्थान है। धाम यह भी अनुपम है। इसके आस-पास ग्रामोंमें क्षत्रिय तथा ब्राह्मण रहते हैं।

अनीश्वरवादी होनेपर भी लेखकके आस्तिक कार्यकलापोंमें कोई अन्तर नहीं था, विधिपूर्वक शिवपूजन सम्पन्न हुआ। पूजाके अनन्तर चार बजे सायङ्काल साथियोंको गाँवकी ओर भेज दिया। हम दो जने पर्वतकी मनोरम भूमिमें भ्रमण करते हुए वन्यफल (काफल) खाते हुए वहाँ विचरण करने लगे।

अकस्मात् एक सुन्दर चट्टानपर खड़ा एक सुन्दर हरिन हमने देखा, उसकी आकृति बड़ी मोहक थी। उसका प्रत्येक अङ्ग स्वस्थ तथा मनोहर

था। हमें देखकर मृग भागा नहीं बल्कि विश्वस्तभावसे हमारी ओर आया। श्रीमती बोली—'यहाँ बाघ होना चाहिये, तभी मृग मनुष्यके समीप आता है।' हम सावधान हो गये और सतर्क दृष्टिसे चारों ओर देखने लगे।

पंद्रह कदम दूर वृक्षकी छायामें एक मनुष्याकृति दृष्टिगोचर हुई। हरिणरूप अन्तर्धान हो गया। मुझे अब ध्यान आया कि हो-न-हो ये ही वे काले बाबा हैं। वह मृग नहीं था, ये ही थे, हमपर अनुग्रह करके दर्शन दिये हैं।

'डरो नहीं, इधर आओ' आवाज सुनते ही बाबाके समीप जाकर हमने दण्डवत् प्रणाम किया।

बाबाका शरीर श्याम सुन्दर था। सिर तथा दाढ़ी-मूँछके बालोंसे वे नृसिंह-जैसे लगते थे। सुखासनसे बैठे थे, कौपीन तक न थी, किंतु शरीर इतना कोमल तथा सुन्दर था कि नेत्रोंकी वृत्ति फिर इधर-उधर नहीं जाती थी।

'कहो, कहाँ रहते हो?'

'यहीं कुछ दूर .... ग्राममें।'

'हाँ, विप्रकुलमें जन्म हुआ है, पुस्तकें भी बहुत पढ़ी हैं।'

'ठीक, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्' तुम्हारे पिताजीका क्या नाम है?

मैंने पिताजीका नाम बतलाया, स्वामीजीने पितामहका नाम पूछा, मैंने वह भी बतलाया, उनके भी पिता-पितामह तथा प्रपितामहका नाम पूछा। अन्तमें छठी पीढ़ीके व्यक्ति गणपति शास्त्रीका नाम सुनते ही वे बोले—'ठीक, गणपति शास्त्री बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान् थे। उनसे वेदान्तका सत्सङ्ग करने मैं भी तरुण-अवस्थामें जाया करता था।'

अब मुझे उनकी आयुका अनुमान लगानेका अवसर मिला कि वे कितने वृद्ध हैं।

महात्मा बोले—'विद्याध्ययन घरपर ही किया कि कहीं बाहर भी गये?'

'कोष, काव्य, ज्योतिष, यजुर्वेद घरपर पिताजी तथा काकाजीसे ही पढ़े। विशेष सिद्धान्त ग्रन्थोंको पढ़ने काशीजी गया। निरुक्त लाहौरमें पढ़ा। आजकल गवर्नमेण्टकी परीक्षा-प्रणालीसे पढ़ाई होती है, उसकी भी उपाधियाँ प्राप्त की हैं।'

'तो बहुत कुछ पढ़े।'

'पढ़ा तो बहुत कुछ, किंतु इतना अज्ञ हूँ कि ईश्वरपर ही विश्वास नहीं होता।'

'हाँ, ऐसा है?' कहकर महात्माने एक करुणापूर्ण तीव्र दृष्टिसे इस दासको देखा। वह क्षण भूलता नहीं। उन आँखोंकी किरणोंमें अपूर्व ज्योति थी, मेरा विद्याभिमान जल गया। हृदय विनयसे काँप उठा, मैं समझता हूँ कि सभी जन्मोंके दोष दग्ध हो गये होंगे। मैं अति भीत तथा संकुचित हो उठा। मुझसे स्वामीजी बोले—

'कोई चिन्ता नहीं, एक बार ऐसा भी भाव जीवनमें आता ही है, जब नर समझता है कि मुझे नारायण दीखते नहीं या उनका कोई प्रकट चमत्कार नहीं दिखाता। इसलिये उनके सम्बन्धमें 'सब झूठी कल्पना है' यह बात कुसङ्गसे और भी दृढ़ हो जाती है। परंतु यह सत्य नहीं। आजकल तुम्हारे देशमें राजा कौन है?'

'राजा तो अंग्रेज जातिके इंग्लैण्डमें पञ्चम जार्ज नामवाले हैं।'

'तुमने कभी उनको देखा भी है?'

'नहीं।'

'तुम उनपर कैसे विश्वास करते हो?'

'उनकी राज्य-व्यवस्था तथा न्याय-व्यवस्थासे।'

'तो क्या इस विश्वमें भी कोई न्याय-व्यवस्था तथा दण्ड-व्यवस्था अथवा नियमित कार्योंको तुम देखते हो?'

'हाँ।'

'वही सर्वोपरि नियन्ता शासक तथा व्यवस्थापक परमात्मा है। फिर भी समझो—दूधमें घृत होता है, पानीमें विद्युत् है, लकड़ीमें आग है, पर प्रकट नहीं दीखती। पर जब अमुक विधिसे मन्थन होता है और अग्नि भी दीखने लगती है। ऐसे ही भक्ति तथा योगकी रगड़से सर्वगत सर्वान्तर्यामी भगवान् भी प्रकट होकर दर्शन देते हैं। देखो—ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी आदि भक्तोंके चरित्रोंमें यही तो बात है। एक बारके तपसे ही अदिति और कश्यपने उस परमात्माको अपना तीन बार पुत्र बना लिया था। वे ही तो त्रिविक्रम, श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए। उन्होंने अपने प्राकट्यके समय अपना अद्भुत दर्शन तथा चमत्कार अपने माता-पिताको दिखलाया था। उन्हींके चरित्रोंको

वाल्मीकि, व्यास आदिने लिखकर अपनेको तथा जगत्‌को पावन किया है।

महात्मा लगभग बीस मिनट इस विषयपर बोले। मैंने वे सब शब्द आकर लिख लिये थे।

काले बाबाके वर्णनकालमें मैं देखता था कि वे कितने अपूर्व भक्त हैं तथा अद्भुत ज्ञानी हैं और योगी तो हैं ही।

ईश्वर-सम्बन्धी प्रसङ्गके पूर्ण होते ही मैंने उनसे एक प्रश्न और किया—

'इस कालमें सनातन धर्मकी रक्षा कैसे होगी?' मुसकराते हुए बाबा बोले—'भोले पण्डित! धर्म जिसकी वस्तु है, वही उसकी रक्षा करता है। तुम तो अपना कर्तव्य पालन करो। तुम्हारे लिये तुम जितना धर्म समझते हो, उसका आचरण करो।'

'वास्तवमें धर्म घटता-बढ़ता नहीं, वह सदा एक ही सनातन स्वरूपमें रहता है। उसके पालन करनेवाले मनुष्योंकी संख्या कभी घटती है, कभी बढ़ती है। जब धर्मपालक लोग अधिक रहते हैं, तब देशमें तथा समाजमें सुख, शान्ति तथा सुव्यवस्था रहती है। जब धर्मपालक कम हो जाते हैं, धर्महीन जन बढ़ जाते हैं, तब देशमें समाजमें और व्यक्तियोंमें दुःख, अशान्ति और दुर्व्यवस्था हो जाती है। दुर्भिक्ष और क्रान्तिके द्वारा सारा जगत् पीड़ित हो जाता है। इसलिये याद रखना—तुम्हारे पालने न पालनेके कारण धर्मका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। तुम्हारा ही लाभ और विनाश उसमें है। किसी गाँवमें यदि सब मनुष्य झूठे या चोर ही बसते हों तो इससे 'सत्य' तथा 'अस्तेय' नामक धर्मके अङ्गोंको कोई हानि नहीं, हानि तो उन प्रमादी लोगोंकी होगी जो उसे नहीं पालते हैं।'

'सर्वज्ञ भगवान्‌का न्यायालय साधारण नहीं। वहाँ कितनी ही चतुराई तथा चालाकी करो किंतु जीवको अन्तमें उस अदालतमें जाना ही है और वहाँ किये-करायेका ठीक-ठीक निग्रहानुग्रह होना ही है। तथा यहाँ भी शुभाशुभ फल भोगने ही हैं।'

भगवान् शङ्करकी पूजाका यह महान् फल था, जो इन शिवरूप संतके दर्शन हुए।

(कल्याण वर्ष २६, पृष्ठ १३०६)

******

तीन संस्कारी प्राणी

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

अनेक बार किसी छोटे-से कारणसे योगभ्रष्ट महापुरुष पशु-पक्षी आदि शरीरमें जन्म ग्रहण करते हैं। जडभरतजीको मृग बनना पड़ा था। एक ऐसी भी कथा सुनी है कि महादानी बलि कुछ दिन गधा बनकर रहे थे। जब भी कोई महापुरुष किसी तिर्यक् योनिमें आते हैं, तब उन्हें पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है। भोगयोनिमें होनेपर भी उनका संयम-साधन उस योनिके अन्य जीवोंसे पृथक् दीखता है। गजेन्द्रको पूर्वजन्मके साधनसे ही ग्राहके द्वारा ग्रस्त होनेपर भगवान्‌का स्मरण हुआ। भगवान्‌की स्मृति तो कहीं भी हो, निष्फल जाती नहीं। हम यहाँ तीन ऐसे ही दिव्य संस्कारसम्पन्न प्राणियोंकी संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

(१)

अयोध्यामें श्रीकनक-भवन-विहारीजीकी सेवामें अयोध्याकी रानी साहिबाकी ओरसे एक घोड़ी रहती थी। यात्रा-उत्सवादिमें उसका उपयोग होता था। कनकभवनमें रहते-रहते ही वह बुढ़िया हो गयी। एक बार रानी साहिबा दर्शन करने आयीं मन्दिरमें श्रीकनकभवनविहारीजीके। उन्होंने घोड़ीको देखकर साथके अपने मुख्य सेवकको आदेश दिया—'यह घोड़ी बुढ़िया हो गयी। इसे अब जमींदारीपर भेज दो और यहाँ प्रभुकी सेवामें कोई अच्छा घोड़ा पहुँचा दो।'

राजमहलसे दूसरा घोड़ा मन्दिरमें आ गया। घोड़ीको रेलद्वारा जमींदारीपर भेजनेके लिये कई स्टेशन भेजना था। जो घोड़ी कभी अड़ती नहीं देखी गयी थी, वह जब लोग स्टेशन ले जाने आये तो भूमिपर लेट गयी। किसी प्रकार भी उठाये उठती ही नहीं थी। अश्वशालाके सेवकोंने बताया 'जबसे इसके बाहर भेजनेकी चर्चा हुई है, तबसे इसने दाना-घास तो क्या जलतक नहीं पिया है। इसकी आँखोंसे बराबर आँसू बह रहे हैं।'

बेचारे मूक प्राणीकी वेदना कौन समझता? रस्सियोंसे बाँधकर, ठेलेपर लादकर घोड़ीको स्टेशन पहुँचाया गया। उसे मालगाड़ीके पशु ढोनेवाले डिब्बेमें बंद कर दिया गया। रस्सियाँ खोल दी गयीं। दाना-घास और जल रख

दिया गया। स्टेशन-मास्टरने किराया लेकर उसको भेजनेकी बिल्टी काट दी।

मन्दिरके महन्तजीको बड़ी दया आयी घोड़ीपर। उन्होंने रानी साहिबाके पास कहलवाया—'घोड़ी उपवास कर रही है। वह बाहर जाकर मर जायगी। इतने दिन वह श्रीकनकभवनविहारीजीकी सेवामें रही। अब बूढ़ी होनेपर उसे अयोध्याकी दिव्य भूमिसे निकाला न जाय।'

बात रानी साहिबाके ध्यानमें भी आ गयी। उन्होंने कह दिया—'घोड़ी चली न गयी हो तो उसे रोक लिया जाय।'

महन्तजी स्वयं स्टेशन गये। पहले वे वहाँ गये, जहाँ घोड़ी मालके डिब्बेमें बंद थी। उनको देखकर उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा वेगसे चलने लगी। तब महन्तजीने उसे पुचकारा, आश्वासन दिया और वे स्टेशनमास्टरके पास आये। स्टेशनमास्टरने कहा—'घोड़ीकी दशा देखकर मुझे भी बहुत दुःख हुआ; किंतु मैं कर ही क्या सकता था? मालगाड़ी तो चली गयी है। घोड़ी जिस डिब्बेमें थी, वह डिब्बा कायदेके अनुसार उसी ट्रेनमें जाना चाहिये था। मैंने उस गाड़ीके गार्डको बिल्टी-नम्बर आदि दे दिये हैं। घोड़ी तो चली गयी।'

जब महन्तजीने बताया कि घोड़ी गयी नहीं तो स्टेशन मास्टरको बड़ा आश्चर्य हुआ। मालगाड़ीके गार्डकी भूलसे ट्रेनमें वह डिब्बा जोड़ा ही नहीं गया था। उस मूक प्राणीकी पुकार और कोई सुने या न सुने, पर कनकभवनमें जो उसके स्वामी आराध्यपीठपर विराजमान हैं, उन्होंने सुन ली थी। आवश्यक लिखा-पढ़ीके काम पूरे हो गये। मालके डिब्बेसे उतारनेपर घोड़ी दौड़ती-भागती सीधे कनकभवनमें अपने स्थानपर आकर खड़ी हुई।

उस भाग्यशाली पशुने जीवनभर कनकभवनकी पशुशालामें निवास किया और श्रीअवधधाममें जब उसने देह-त्याग किया, तब उसका शरीर सरयूजीमें प्रवाहित किया गया।

(२)

गङ्गातटपर राजघाटमें जब श्रीअच्युतमुनिजी महाराज रहते थे, तब उनकी कुटियाके पास एक कुत्ता रहता था। लोग कहते थे—'यह बहुत ही निकम्मा कुत्ता है। किसीको भूँकता ही नहीं।' कुत्तोंसे भी झगड़ते उसे किसी दिन नहीं देखा गया। वहाँ संतों तथा सेवकोंके जूँठे टुकड़े, जो मिल जाते, वही खाकर चुपचाप पड़ा रहता था।

श्रीअच्युतमुनिजीसे जब कोई पूछता—'महाराज! एकादशी आज है या कल?' तो वे सेवकोंसे पूछते कि 'कुत्तेने आज भोजन किया या नहीं?' बात यह थी कि कुत्ता एकादशीको कुछ भी नहीं खाता था। अनेकों बार उसे परीक्षाके लिये एकादशीको दूध-मिठाइयाँ आदि दी गयीं; पर उसने उन्हें सूँघा तक नहीं। किस दिन एकादशी है, इसका उसे किसी अलक्ष्य संस्कारसे ही ज्ञान हो जाता था।

मरनेके दिन वह कुत्ता आकर श्रीअच्युतमुनिजी महाराजके चरणोंमें लोटने लगा। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि कभी वह ऐसा नहीं करता था। महाराजने उसे पुचकारा। कुछ क्षण बाद वह उठा और श्रीगङ्गाजीमें जाकर स्नान करने लगा। स्नान करते-करते वह गङ्गाजीमें ही किनारे थोड़े जलमें लोट गया। वहीं उसने शरीर छोड़ दिया।

(२)

करह (ग्वालियर) के श्रीबाबाजीके यहाँ पहले एक कटी पूँछका कुत्ता रहता था। महाराजजी उसे बंडा भगत कहा करते थे। भगवान्‌का भोग लगनेपर उसके लिये पत्तल लगाकर रक्खी जाती थी। वह नित्य प्रातः-सायं दूसरे साधुओंके समान महाराजजीके चरणोंमें दण्डवत् करता-सा लेट जाता था।

उन दिनों एक सज्जन महाराजजीके लिये गाँवसे दूध और रोटी लाते थे। उनके कई गाय-भैंसें थीं। महाराजजी उनका दूध तो बंडाको पिला देते और रोटी स्वयं खाते। एक दिन उन्होंने कहा—'मैं इस कुत्तेके लिये दूध नहीं लाता। आप नहीं पीते तो दूसरे संतोंको क्यों नहीं दे देते?

महाराजजीने कहा—'इस प्रकार मत बोलो। बंडा भी संत ही है।'

दूसरे दिन उनका दूध बंडाके सामने रक्खा गया तो वह उठकर अन्यत्र जा बैठा। उन सज्जनको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत पुचकारनेपर भी बंडाने उनका दूध स्वीकार नहीं किया।

दो-चार दिन इस घटनाको बीते और बिना किसी कारणके उनकी एक भैंस मर गयी। तीन-चार दिनका अन्तर पड़ा और दूसरी मरी। अब वे बहुत घबराये। महाराजजीके पास आकर रोने लगे। महाराजजीने कहा—'अपराध तो तुमने बंडा भगतका किया है, उससे क्षमा माँगो।' बंडाके सामने दूध रखकर हाथ जोड़कर वे रो पड़े। अब बंडाने उठकर चुपचाप दूध

पी लिया। फिर उनका कोई पशु मरा नहीं।

एक दिन बंडा असमयमें आकर महाराजजीके पैरोंके पास लोटने और कूँ-कूँ करने लगा। महाराजने कहा—'तू क्या चाहता है? कहाँ जाना चाहता है? अच्छा जा।'

बंडाको अनुमति मिल गयी। आश्रमके बाहर जाकर वह भूमिमें लेट गया। सूर्यनारायणकी ओर देखते हुए उसने शरीर छोड़ दिया। महाराजने बंडाकी देहको समाधि दी और उसका भंडारा कराया।

(कल्याण वर्ष २६, पृष्ठ १३०८)

******

भक्त देवाजी पुजारी

उदयपुरके समीप श्रीरूपचतुर्भुज स्वामीका मन्दिर है। देवाजी पण्डा उसमें पुजारी थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे; परंतु भगवान्‌की पूजा-अर्चना बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक करते थे। भगवान्‌में उनका विश्वास था, जो भक्तिके लिये परमावश्यक साधन है। भगवान्‌की सेवासे उनका अज्ञान-अन्धकार नष्टप्राय हो चुका था।

एक दिनकी बात है—उदयपुरनरेश एक पहर रात बीतनेके बाद मन्दिरमें आये। शयनकी आरती हो चुकी थी। भगवान् पौढ़ चुके थे। भगवान्‌को शयन कराकर देवाजीने भगवान्‌के गलेका पुष्पहार उतारकर अपने सिरपर रख लिया था और अन्तर्गृहके पट बंद करके वे मन्दिरसे बाहर आ रहे थे—इसी समय महाराणा वहाँ पहुँचे। दरवाजेपर अकस्मात् महाराणाको देखकर देवाजी घबराकर मन्दिरमें घुस गये और उन्हें पहनानेके लिये भगवान्‌की माला ढूँढ़ने लगे। उस दिन दूसरी माला थी नहीं, अतएव महाराणा नाराज न हों, इसलिये देवाजीने मस्तकपर धारण किया हुआ पुष्पहार उतार लिया और बाहर निकलकर महाराणाके गलेमें पहना दिया। सोचने-विचारनेके लिये तो समय ही कहाँ था? देवाजीके सिरके सारे बाल सफेद हो गये थे और बाल थे लंबे-लंबे। दो एक सफेद केश मालामें लगे महाराणाके गलेमें आ गये। राणाने बालोंको देखकर व्यङ्गसे कहा—'पुजारीजी! मालूम होता है भगवान्‌के सारे केश सफेद हो गये हैं।' देवाजीको इसका उत्तर देनेके

लिये और कुछ भी नहीं सूझा, उन्होंने जल्दी-जल्दीमें डरते हुए कह दिया—'हाँ सरकार! ठाकुरजीके सारे बाल सफेद हो गये हैं।' राणाको पुजारीके इस उत्तरपर हँसी आ गयी। साथ ही पुजारीके प्रति मनमें रोष भी आया। उन्होंने गम्भीर होकर कहा—'मैं कल सबेरे स्वयं आकर देखूँगा।' यों कहकर वे लौट गये।

देवाजीने उतावलीमें राणासे कह तो दिया, पर अब उनको बड़ी चिन्ता हो गयी। प्रातःकाल राणा आवेंगे और भगवान्‌के सफेद बाल न पाकर न जाने क्या करेंगे। देवाजीके मनमें आया—'भगवान् तो नित्य नव सुकुमार--नित्य तरुण हैं, उनकी गहरी घुँघराली काली अलकावली निरन्तर उनके मुनि-मन-मोहन श्रीअङ्गकी शोभा बढ़ाती रहती है, जिनकी तनिक-सी सुललित मधुरातिमधुर मुसकानसे जगत् प्रकाशित होता है, जिनके सुन्दरताकी सीमारूप नित्य किशोर श्याम वदनको देखकर समस्त जगत् मोहित हो जाता है, सुन्दरताकी अधिष्ठातृ देवता साक्षात् श्री नित्य-निरन्तर जिनकी पूजा-अर्चनामें लगी रहती है, उन नित्य दिव्य यौवन-सुषमासे सुशोभित भगवान्‌में वृद्धावस्था कहाँसे आवेगी। उनके केश सफेद कहाँसे होंगे?' यों सोचते-सोचते भगवान्‌के पुराने पुजारी भक्त देवाजी बड़े व्याकुल हो गये!

देवाजीकी आँखोंसे नींद उड़ गयी, खाया तो कुछ था ही नहीं। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। देवाजीने कहा—"मेरे स्वामी! मेरे मुँहसे सहसा ऐसी बात निकल गयी। तुम तो नित्य नव किशोर हो। तुम्हारे सफेद केश कैसे? पर सबेरे महाराणा आकर जब तुम्हारे काले बाल देखेंगे तो तुम्हारे इस सेवककी क्या स्थिति होगी। राणाकी आँखोंमें यह सर्वथा मिथ्यावादी सिद्ध हो जायगा। मुझमें न भक्ति है, न श्रद्धा है। मैं तो केवल तुम्हें तुलसी-चन्दन चढ़ाकर अपना पापी पेट भरता हूँ। तुम्हारी नहीं, मैं तो पेटकी ही पूजा करता हूँ; परन्तु लोग मुझे तुम्हारी पूजा करनेवाला बतलाते हैं! सबेरे अब महाराणा मेरी बातको झूठ पाकर सबके सामने मेरी भर्त्सना करेंगे, तब लोग यही कहेंगे कि कितना बड़ा मूर्ख है यह। कहीं भगवान्‌के—फिर एक मूर्तिके भी श्वेत केश होते हैं? कुछ लोग मुझे अत्यन्त डरपोक बतावेंगे और कुछ यह कहेंगे कि 'अजी, भगवान् यदि आज भी सच्चे होते या भक्तवत्सल होते तो क्या बेचारे गरीब पुजारीकी बात न रखते?

कहते हैं, प्रह्लादकी बात सच करनेके लिये वे खंभेको चीरकर निकले थे। द्रौपदीकी लाज बचानेके लिये राजसभामें उसकी अन्तहीन साड़ी बन गये थे। राधारानीके कलङ्कभञ्जनके लिये सहस्र छिद्रोंके घड़ेमें उनके द्वारा जल मँगवा दिया था। फिर अपने केशोंको सफेद करना उनके लिये कौन बड़ी बात थी?' जितने मुँह, उतनी बातें। नाथ! यह आपका अपराधी, दंभी पुजारी उस समय कैसे मुख दिखलायेगा? और किसको क्या उत्तर देगा? पर प्रभो! मैं कैसे कहूँ कि तुम मेरी बात रखनेके लिये बुढ़ापा स्वीकार कर सफेद बालोंवाले बाबाजी बन जाओ। तुम्हें जो ठीक लगे, वही करो।''

यों कहकर देवाजी फुफकार मारकर रो पड़े! इसी प्रकार भगवान्‌को पुकारते और रोते-कलपते रात बीती। सारा जगत् सोता था। देवाकी करुण पुकार किसीने नहीं सुनी। जागते थे देवा और देवाके हृदय-देवता—जो सदा ही जागते हैं और सबकी गुप्त-से-गुप्त बातोंको सुनते हैं। भृत्यवत्सल, शरणागतरक्षक भगवान्‌ने अपने पुजारी देवाजीकी करुण पुकार सुनी। कैसे न सुनते? वे अनाथके नाथ, आर्त्तके आधार, विपन्नके बन्धु, दीनके आश्रय, कंगालके धन और अशरणके शरण जो ठहरे! भक्तकी बात रखनेके लिये भगवान्‌ने लीला की। चतुर्भुज भगवान्‌के सारे बाल सफेद हो गये! धन्य!

देवाजीने नहा-धोकर काँपते-काँपते अन्तर्गृहके किंवाड़ खोले, उनका हृदय भयके मारे धक्-धक् कर रहा था। किंवाड़ खोलते ही देखा—कल्याणमय कृपाकल्पतरु श्रीविग्रहके समस्त केश शुभ्र हो गये हैं। देवाके हृदयकी विचित्र दशा है—यह स्वप्न है कि साक्षात्। करुणा-वरुणालयकी इस अतुलनीय कृपा और दीनवत्सलताको देखकर प्रेमविह्वल और आनन्दोन्मत्त देवाकी बाह्य चेतना जाती रही। वे बेसुध होकर जमीनपर गिर पड़े। पहुँच गये दिव्य देशमें और मुग्ध होकर पान करने लगे—प्रभुके उन्मादकारी पाद-पद्म-मकरन्द-सुधा-रसका। बहुत देरतक उनकी यही दशा रही। पता नहीं, इस बाहरकी बेसुध अवस्थामें उन्होंने और किस जगदतीत विलक्षण सुखका कैसा और कितना अनुभव किया!

बहुत देरके बाद देवाकी समाधि टूटी। उनके दोनों नेत्रोंसे आनन्द और प्रेमके शीतल आँसुओंकी वर्षा हो रही थी। इसी समय महाराणा परीक्षाके लिये पधारे। देवाजीको विकलतासे रोते देखकर उन्होंने समझा कि 'रात्रिको

मुझसे कह तो दिया पर अब भयके मारे रो रहा है।' इतनेमें ही उनकी दृष्टि भगवान्‌के श्रीविग्रहकी ओर गयी, देखते ही राणा आश्चर्य-सागरमें डूब गये—श्यामसुन्दरके समस्त केश सफेद चाँदी-से चमक रहे हैं। महाराणाको विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने समझा—'पुजारीने अपनी बात रखनेके लिये कहींसे सफेद बाल लाकर चिपका दिये हैं।' राणाके मनमें परीक्षा करनेकी आयी और उन्होंने अपने हाथसे चट भगवान्‌के सिरका एक बाल बलपूर्वक उखाड़ लिया। राणाने देखा—बाल उखाड़ते समय श्रीविग्रहको मानो दर्द हुआ और उनकी नाकपर सिकुड़न आ गयी। इतना ही नहीं, बाल उखड़ते ही सिरसे रक्तकी बूंद निकली और वह राणाके अंगरखेपर आ पड़ी। राणा यह देखते ही मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़े।

पूरा एक पहर बीतनेपर महाराणाको चेत हुआ। उन्होंने देवाजीके चरण पकड़कर कहा—'प्रभो! मैं अत्यन्त मूढ़, अविश्वासी और नीचबुद्धि हूँ। मैंने बड़ा अपराध किया है। भक्त क्षमाशील होते हैं—ऐसा मैंने सुना है। आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये—मेरी रक्षा कीजिये।' यों कहते-कहते महाराणा अपने आँसुओंसे देवाजीके चरण धोने लगे। देवाजीने महाराणाको उठाकर हृदयसे लगा लिया—गद्‌गदवाणीसे कहा—'यह सब मेरे प्रभुकी महिमा है—मैं अशिक्षित गँवार केवल पेटकी गुलामीमें लगा था। भगवान्‌की पूजाका तो नाम था। पर मेरे नाथ कितने दयालु हैं, जो मेरी मिथ्या पूजापर इतने प्रसन्न हो गये और मुझ नालायककी बात रखनेके लिये उन्होंने अपने नित्यकिशोर सुकुमार विग्रहपर श्वेत केशोंकी विचित्र रचना कर ली। मैं क्या क्षमा करूँ—मैं तो स्वयं अपराधी हूँ। राजन्! मैंने तो झूठ बोलकर आपका तथा भगवान्‌का भी अपराध किया था। पर वे ऐसे दीनवत्सल हैं कि अपराधीके अपराधपर ध्यान न देकर उसकी दीनतापर ही रीझ जाते हैं।' राणा तथा देवा दोनों ही भगवान्‌की कृपालुताका स्मरण करते हुए रो रहे थे।

इस घटनाके बाद ही यह आज्ञा हो गयी कि आगेसे राणावंशमें राजगद्दीपर बैठनेके बाद कोई भी मन्दिरमें नहीं आ सकेंगे। जबतक कुमार रहेंगे, तभीतक आ सकेंगे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

(कल्याण वर्ष २५, पृष्ठ १२४७)

******

पुरुषोत्तम भक्त

गङ्गाजीके पवित्र तटपर एक गाँवमें पुरुषोत्तम नामक एक ब्राह्मण रहते थे। माता-पिता छोटी उम्रमें मर गये थे। दादीने उनको पाला था; बुढ़िया दादीका भगवान्‌में सरल विश्वास था और वह दिन-रात मुँहसे राम-राम रटती रहती थी। दादीके शुभ सङ्गसे पुरुषोत्तमको भी राम-नाम रटनेकी बान पड़ गयी। राम-नाममें बड़ी अनोखी मिठास है; परंतु इस मिठासका अनुभव होता है रुचि होनेपर ही। लेकिन यह रुचि भी होती है नामके सतत सेवनसे ही। पुरुषोत्तमजी तो बचपनसे ही राम-नाम रटने लगे थे। अतएव इनको नाममें रुचि हो गयी और रुचि होनेपर ही इन्हें मिठास भी मिल ही गयी। राम-नामका यह रस इतना मधुर है कि इसके एक बार भी चख लेनेपर फिर इनके सामने सारे रस नीरस और फीके हो जाते हैं—

श्रीतुलसीदासजीने गाया है—

जो मोहि राम लागते मीठे।

तो नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥

'यदि मुझे राम मीठे लगे होते तो नव रस (शृंगार हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त—साहित्यके ये नौ रस) और छः रस (कटु, तीक्ष्ण, मधुर, कषाय, अम्ल और लवण—भोजनके ये छः रस) नीरस और फीके पड़ जाते।'

पुरुषोत्तम इस रसका स्वाद चख चुके थे, इसलिये उन्हें अब जगत्‌के किसी रसमें रति नहीं रह गयी। दादीने एक-दो बार कहा, पर पुरुषोत्तमने विवाह नहीं किया। समयपर दादीका देहान्त हो गया। फिर तो पुरुषोत्तम सर्वथा स्वतन्त्र होकर रामभजनमें लग गये। घरमें कुछ जमीन थी, उसीमें खेती करते। स्वयं परिश्रम करते और जो अनाज पैदा होता, उसीसे जीवननिर्वाह करते। उस अनाजमेंसे कुछ बचता, उसको बेचकर कपड़ा, तेल, मसाला, बैल, हल आदि सामान ले आते। उनका नियम था—न माँगकर खाना, न बिना परिश्रमका खाना, न पड़े-पड़े खाना, न किसीसे कभी कुछ लेना। कम-से-कम आवश्यकता और उसे अपने परिश्रमसे ही पूरा करना। पुरुषोत्तमके

दिन बड़े ही सुखसे कटते थे। वे जब खेतमें परिश्रम करते, तब भी उनके मुँहसे रामका नाम और मनमें रामका ध्यान रहता। उनका परिश्रम भी सारा अपने इष्टदेव रामकी पूजाके लिये ही होता।

घरमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर प्राचीन विग्रह था। बड़े प्रेम, चाव, भाव और विधिसे पुरुषोत्तमजी भगवान्की पूजा करते। स्वयं रसोई बनाकर भगवान्के भोग लगाते और उसी प्रसादसे अपने अंदर रहनेवाले भगवान्की तृप्ति करते।

भगवान्ने कहा है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

(गीता १५। १४)

'मैं ही सब प्राणियोंके शरीरोंमें स्थित प्राण और अपानसे संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकारके अन्नको पचाता हूँ।'

बाहर भी भगवान्को भोग लगाना और भीतर भी भगवान्को ही। भक्त जो कुछ करता है, बाहर-भीतर सब भगवान्के लिये ही करता है। वह अपना अस्तित्व भी भगवान्के ही आधारपर मानता है। स्वतन्त्र न वह कुछ है, न उसका अपना कोई अलग कार्य है। उसके सारे कार्य भगवान्के कार्य हैं; क्योंकि वह सर्वदा और सर्वथा भगवान्का ही है। पुरुषोत्तम भक्तके सारे कार्य इसी भावसे सम्पन्न होते। निरन्तर भगवान्का अखण्ड स्मरण और भगवान्के लिये ही मन-वाणी-शरीरकी प्रत्येक क्षणकी प्रत्येक क्रिया। यही तो भगवदीय जीवन है।

ज्यों-ज्यों भजन बढ़ता गया, त्यों-ही-त्यों भावमें प्रगाढ़ता आती गयी। लगभग बारह वर्षकी साधनासे पुरुषोत्तमको सब कुछ राममय हो गया। अब उनकी खेती-बाड़ी छूट गयी। खेती-बाड़ी कहाँसे होती—गाढ़ समाधिमें भोजन-पानका भी कोई पता नहीं रह गया। श्रीमद्भागवतमें कथित श्रीभगवान्की निम्नलिखित उक्ति मानो उनमें पूर्णतया चरितार्थ हो गयी—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(११। १४। २४)

भगवान् श्रीरामका नाम-गान करते हुए उनकी वाणी गद्गद हो जाती। चित्त द्रवित होकर बहने लगता। एक क्षणके लिये भी रोना बंद नहीं होता। कभी वे खिलखिलाकर हँसने लगते, कभी लाज छोड़कर उच्च स्वरसे गाने लगते और कभी उन्मत्त होकर नाचने लगते। भक्तिरसमें सराबोर हुए भक्त पुरुषोत्तमजीकी इस स्थितिमें जो कोई भी उनके पास आता, उनकी इस दिव्य भावमयी स्थितिके दर्शन करता, वही पवित्र हृदय होकर भावोन्मत्त हो जाता।

पुरुषोत्तमजीकी रामधुन दूर-दूरतक पहुँची। घर-घर और गाँव-गाँवमें लोग राम-नामका मधुर कीर्तन करने लगे। पुरुषोत्तमजीके दर्शनार्थ दूर-दूरसे लोग आने लगे। पर उनकी भाव-समाधि प्रगाढ़-से-प्रगाढ़तर होती गयी। वे सदा-सर्वदा बाह्यज्ञानशून्य रहते और उपर्युक्त भावोंका विलक्षण प्रकार उनमें निरन्तर होता रहता। इस दशामें वे पाँच वर्षतक रहे। एक दिन इसी दशामें भगवान् श्रीरामके विग्रहके सामने नाचते-नाचते ही उन्होंने तीन बार बड़े जोरसे राम-राम-रामका घोष किया और उसी क्षण उनका ब्रह्मरन्ध्र फट गया। शरीर भगवान्के श्रीविग्रहके चरणोंपर गिर पड़ा। उस समय भी उनके मुखमण्डलपर अपूर्व तेज छाया था और मानो उनके रोम-रोमसे रामध्वनि हो रही थी।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय।

(कल्याण वर्ष २५, पृष्ठ १३२४)

******

भक्तिमती चन्द्रलेखा

पश्चिमोत्तर प्रान्तमें एक जमींदारके घर चन्द्रलेखाका जन्म हुआ था। चन्द्रलेखा जब नन्हीं-सी बालिका थी, तभी उसे देखकर सबका मन उसकी ओर खिंच जाता था। उसके अन्तरमें मानो एक पूर्ण ज्योत्स्नायुक्त सुधामय सुधाकर छिपा था, जिसकी मृदु मधुर किरणें उसके अङ्ग-अङ्गसे छिटकती रहती थीं। ज्यों-ज्यों चन्द्रलेखाकी उम्र बढ़ती गयी, त्यों-ही-त्यों उसके अन्तःकरणकी सात्त्विक वृत्तियाँ भी विकसित होने लगीं। उसकी धीरता, गम्भीरता, सौम्य स्वभाव, मृदु-मधुरभाव, शान्तवृत्ति, मुसकराती मुखाकृति

और सरलता देखकर, ऐसा कोई नहीं था जो उससे स्नेह किये बिना रह सकता। उसकी उम्र अभी पाँच-छः वर्षकी थी और वह सबके लिये खिलौना बनी हुई थी।

एक दिन चन्द्रलेखाके घर एक साधु आये। चन्द्रलेखाके भक्त पिताने उनका भलीभाँति स्वागत सत्कार किया। साधु महाराज स्नान करके पूजा करने बैठे। उनके पास एक सुन्दर शालग्रामका विग्रह था। चन्द्रलेखा उनके पास जाकर बैठ गयी और भगवान्‌की पूजा देखने लगी। सरल हृदयकी बालिका थी, उसके मनमें आया—'मैं भी इसी प्रकार भगवान्‌की पूजा करूँगी' और उसने साधु महाराजसे बड़ी ही मीठी वाणीमें कहा—'महाराजजी! ऐसा एक भगवान् मुझको दीजिये। आपकी ही भाँति मैं भी उसकी पूजा करूँगी—नहलाऊँगी, चन्दन लगाऊँगी, कपड़े पहनाऊँगी, माला चढ़ाऊँगी, खिलाऊँगी, आरती उतारूँगी, फिर सुलाऊँगी और जब मैं अकेली रहूँगी, तब खूब प्यार-दुलार करूँगी—जैसे मेरी माँ मेरा किया करती हैं।'

शिशु-बालिकाकी भोली बातें सुनकर साधु महाराजको हँसी आ गयी। उन्होंने कुछ कहा नहीं। साधुकी इस उपेक्षासे चन्द्रलेखाको बड़ा दुःख हुआ। वह फूट-फूटकर रोने लगी। साधुजीने भगवान्‌का मिश्री-प्रसाद देकर उसे भुलाना चाहा, पर उसका रोना किसी तरह बंद नहीं हुआ। साधुजीने अन्य कोई उपाय न देखकर एक छोटा-सा काला पत्थर लाकर उसे दे दिया और कह दिया कि 'ये ही भगवान् हैं। इनका नाम सिलपिल्ले है।' बस, अब तो चन्द्रलेखाके आनन्दका पार नहीं है। वह अपने सिलपिल्ले भगवान्‌को सिरपर रखकर चली गयी और आनन्दमें मतवाली होकर नाचने लगी।

साधु महाराज चले गये; परंतु चन्द्रलेखाको जो भगवान् और उनका मन्त्र मिल गया, वह उन्हींको लेकर मस्त हो गयी। पिताजीने एक सिंहासन बनवा दिया; माताने पूजाका सामान मँगवा दिया। सुलानेके लिये एक सुन्दर पिटारी बनवा दी। चन्द्रलेखाका भगवत्पूजन और सिलपिल्ले मन्त्रका जप निरन्तर चलने लगा। माता-पिता तथा अड़ोसी-पड़ोसी उसकी पूजा देखकर बड़े प्रसन्न होते। पर चन्द्रलेखा किसीकी ओर न ताककर तद्‌गतचित्तसे पूजामें लगी रहती। उसकी आँखोंसे निरन्तर प्रेमाश्रु बहते रहते।

काल तो कभी रुकता नहीं, देखते-देखते चन्द्रलेखाकी उम्र विवाहके

योग्य हो गयी। चन्द्रलेखाकी इच्छा विवाह करनेकी नहीं थी; परंतु माता-पिताकी इच्छाके सामने हिंदूबालिका अपने विवाहके सम्बन्धमें कैसे कुछ कहे? पिताने योग्य वर ढूँढ़कर सम्बन्ध कर दिया। बारात आयी। विधिपूर्वक विवाह हो गया। चन्द्रलेखाको भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषणोंसे सजाकर और बहुत-सा दहेज देकर पिताने आँसू बहाते हुए विदा कर दिया। वह पालकीपर सवार हो गयी और अपने प्यारे सिलपिल्ले भगवान्‌की पिटारीको आदरपूर्वक पालकीपर पधरा लिया। चन्द्रलेखाने बात-ही-बातमें यह सुन लिया था कि उसका पति हरिविमुख है। इससे उसको बड़ा दुःख हो रहा था; परंतु 'भगवान् मेरी निश्चय ही सहायता करेंगे' इस विश्वासको लेकर वह रोती हुई ससुरालके लिये विदा हो गयी।

रास्तेमें नदीके तटपर बारात ठहरी। पालकी भी ठहरायी गयी। इसी अवकाशमें चन्द्रलेखाका पति अपनी नवविवाहिता पत्नीका मुख देखने और उससे दो-एक मीठी बात करनेके लिये पालकीके पास आया। चन्द्रलेखाके मनमें बड़ा क्षोभ था। वह तो अपना तन-मन-जीवन श्रीभगवान्‌के अर्पण कर चुकी थी। हरिविमुख पतिका मुख देखनेमें उसे बड़ा सन्ताप हो रहा था। उसने रोते-रोते कहा—'स्वामिन्! मैंने सुना है आपका मेरे श्रीहरिके प्रति प्रेम नहीं है। मेरे और आपके सभीके सर्वस्व तो श्रीहरि ही हैं। उनसे विमुख होनेपर जीवका कभी कल्याण नहीं हो सकता। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ—आप समस्त कल्याणगुणोंके भण्डार आनन्दनिकेतन परम प्रियतम मेरे प्रभुसे प्रेम करें। आप मेरे प्रभुसे प्रेम करेंगे तब मेरा हृदय खिल उठेगा और मैं बड़े चावसे आपके चरणोंकी सेवा करूँगी।' नास्तिक पतिके हृदयमें पत्नीके ये वाक्य बाण-से बिंध गये। उसने क्रोधित होकर चन्द्रलेखाके भगवान्‌की पिटारी छीन ली और उसे नदीके प्रवाहमें बहा दिया। इस दृश्यको देखकर चन्द्रलेखाका हृदय मानो विदीर्ण हो गया। वह ऊँचे स्वरसे रोने-कल्पने लगी। पतिने तथा बरातियोंने उसे शान्त करनेकी बहुत कोशिश की; परंतु उनका रुदन बंद नहीं हुआ। उसके हृदयकी क्या स्थिति थी इसे दूसरे कैसे समझ सकते। रोती हुई ही वह ससुराल पहुँची।

चन्द्रलेखाके तो हृदयनिधि ही छिन गये हैं। जगत्‌के सारे सुखोंके

नाश हो जानेपर भी जिन अपने भगवान्‌को लेकर वह सुखपूर्वक जीवन बिता सकती थी, उनके वियोगमें उसकी कैसी दशा है और वह क्यों रो रही है, इस बातको बेचारी विषयासक्त ससुरालकी स्त्रियाँ कैसे समझ सकतीं। उन्होंने सोचा 'पहले-पहल बहू ससुराल आती है, तब रोया ही करती है। ऐसे ही यह भी रोती होगी। दो-चार दिनोंमें अपने ही शान्त हो जायगी।' पर चन्द्रलेखाका तो रोना दूसरा ही था। उसकी तो हृदय-तन्त्री ही तोड़ दी गयी है। चन्द्रलेखा न सोती है, न खाती है, न किसीसे कुछ बोलती है, आठों पहर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहती रहती है। आँसुओंके प्रवाहसे उसका सारा वक्षःस्थल भीगा रहता है। उसका स्वर्ण-सा मुख-कमल सर्वथा मुरझा गया है। सासको अपने पुत्रसे जब सारी बातें मालूम हुई, तब उसने बहूसे बड़े दुलारसे पूछा। इसपर उसने कहा—'माताजी! मेरा जीवन तो मेरे हृदयनाथ भगवान्‌के हाथमें है। उनके मिलनेपर ही जीवन रह सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं है।'

जब उन लोगोंने देखा कि अब इसके प्राण नहीं बच सकते, तब वे लोग उसे लेकर नदीके तीरपर वहीं आये, जहाँ उसके पतिने ठाकुरजीकी पिटारीको जलमें बहा दिया था। चन्द्रलेखाके पतिने कहा—'हमलोग यहाँ नदीके तटपर तो आ गये हैं; परंतु पिटारीका पता कैसे लगेगा। वह तो उसी समय नदीकी धारमें बह गयी थी। खोजकर उसका पता लगाना ठीक है। पता नहीं पिटारी डूब गयी है या बहकर बहुत दूर चली गयी है। मुझसे अवश्य बड़ी भूल हुई, मैंने तुम्हारे भावको नहीं समझा, पर अब क्या उपाय है।' चन्द्रलेखाने कोई उत्तर नहीं दिया और वह बड़े विश्वासके साथ रो-रोकर अपने प्रभुसे प्रार्थना करने लगी—

कृपानाथ! इस आपकी दासीसे ऐसा क्या अपराध हो गया कि आपने ऐसी निर्दयताके साथ त्याग कर दिया। नाथ! मेरे पति कहते हैं, 'आपका पता नहीं है, कहाँ हैं; आप डूब गये हैं कि कहीं बह गये हैं।' मैं तो समझती हूँ, आप सदा सर्वत्र हैं, जहाँ आपके लिये मनुष्यके प्राण रो उठते हैं, वहीं आप प्रकट हो जाते हैं। आपके डूबनेके लिये तो एक स्थान है वह है प्रेमी भक्तका सुधाभरा हृदय-समुद्र! आप शायद उसीमें

कहीं डूबे हों, पर अब तो मेरी करुण पुकार सुनकर तुरंत आ जाइये। मैं विश्वासी नहीं हूँ पर मेरे प्राण अवश्य आपके लिये रो रहे हैं। प्रभो! आपके सिवा संसारमें और कौन है, जिसे मैं 'मेरा' कह सकूँ। कोई सुखके साथी हैं, कोई यौवनके लोलुप हैं, बहुत हुआ तो कोई मरणकालतकका संगी हो सकता है; परंतु मरनेके बाद भी, माताके पेटमें भी, स्वर्ग-वैकुण्ठ और नरकमें भी साथ रहनेवाले, साथ-साथ सुख-दुःखका अनुभव करनेवाले, सदा हृदयसे लगाये रखनेवाले, किसी भी अवस्थामें उपेक्षा-घृणा न करके सदा हृदयसे प्यार करनेवाले तो एकमात्र आप ही हैं। मुझ अनाथ और कंगालके तो सर्वस्व धन ही आप हैं। मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिये, जहाँ कहीं भी हों, तुरंत आकर दर्शन दीजिये, हृदयसे लगकर मेरी छातीको शीतल कीजिये—

मिलहु मोहि अब आइ प्रभु! दयासिंधु भगवान।
दरसन बिनु तव दासि यह तजन चहति है प्रान॥

भगवान् भृत्यवत्सल हैं, भक्तसर्वस्व हैं, भक्तार्ति कातर हैं, उनसे भक्तके निश्छल निष्काम आँसू नहीं देखे जाते। जो उनके लिये व्याकुल होकर एक भी आँसूकी बूँद बहा देता है, उसीके सामने प्रकट होनेमें वे देर नहीं करते। यहाँ तो चन्द्रलेखाकी रोते-रोते आँखें फूल गयी हैं। भगवान् अब कैसे रहते? अकस्मात् नदीमें एक तरङ्ग आयी और जलराशिको भेद करके सिलपिल्ले भगवान्‌की पिटारी निकली और तरङ्गके साथ ही उछलकर वह चन्द्रलेखाकी गोदमें उसके हृदयदेशपर आकर चिपट गयी—

सुनतहि अति आरत बचन, करुनानिधि अतुराइ।
निकसि सरित ते, गोद तेहि आ लिपटे हरि धाइ॥

चन्द्रलेखाने भगवान्‌को उठाकर मस्तकपर धारण किया! सारा कष्ट सदाके लिये बह गया। इस आश्चर्य-घटनाको देखकर नास्तिक हरिविमुख पतिका मन भी बदल गया। उसका हृदय भी भगवान्‌के लिये रो उठा, उसने अपना अपराध स्वीकार करके भगवान्‌से क्षमा माँगी। भगवान्‌ने अपनी भक्तिपरायणा चन्द्रलेखाके इच्छानुसार उसके पतिको दुर्लभ भक्ति दी। सास-ननदका हृदय भी भक्ति-रससे द्रवित हो गया। चन्द्रलेखाकी भक्तिकी बाढ़ने

रेतीले रेगिस्तानको पवित्र प्रेमसुधासे लहरा दिया। सूखा बगीचा लहलहा उठा। समस्त श्वसुरकुलका उद्धार हो गया।

बोलो! भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

(कल्याण वर्ष २५, पृष्ठ १३९२)

******

रोग और मन्त्र

(लेखक—कविराज श्रीप्रतापसिंहजी)

मैं बालकपनसे ही जप करनेका अभ्यासी हूँ। जब मैं छोटा था, अपने पिताजीको गायत्रीका जप करते देखता था। इससे मुझे भी जप करनेकी ओर आकर्षण हो गया। प्रतिदिन जप एवं पाठ करना और गीता आदिका नियमित रूपसे अध्ययन करना जीवनकी एक साध बन गयी।

जीवनमें अनेक बार जप, तप, योग, साधन आदि किये; पर इस बारके रोगमें जो मन्त्रका प्रभाव देखा, वह आश्चर्यजनक है।

घटना इस प्रकार है—मैं राजस्थानके आयुर्वेदिक विभागका अध्यक्ष नियुक्त हुआ, और पहली बार ही मुझे बीकानेर और जोधपुरमें ग्रीष्मकालीन दौरा करना पड़ा। वहाँकी भयानक गर्मी और लूने अपना काम किया और मैं २५ अप्रैलको उदयपुर पहुँचते ही अंशुघातसे पीड़ित हो गया। प्रारम्भमें दो-तीन दिनोंतक तो व्याधिका प्रभाव अधिक नहीं रहा, पर २७ अप्रैलको उसने उग्ररूप धारण किया और अत्यन्त तीव्र सर्वाङ्ग-दाह, उग्रज्वर और मूर्छाने एक ही साथ शरीरपर प्रबल आक्रमण किया। सन्निपातज्वरके लक्षण भयङ्कर रूपसे व्यापक हो गये। चिकित्सक घबरा गये और विविध प्रकारकी व्यवस्था करने लगे। मुझे सम्भवत: एक बार होश आया और मैंने सब चिकित्साएँ रोक दीं एवं आदेश दिया कि मुझे बिना चिकित्साके ही मरने दो।

इतनेमें ही मैं फिर मूर्छित हो गया। जब मुझे होश आया, रात्रिका अधिकांश बीत चुका था और मुझे एक स्वप्न आया। मैंने देखा, एक काले रंगकी भयङ्कर मूर्ति हाथमें नंगी तलवार लिये मुझपर वार करनेके लिये दौड़ी आ रही है और मेरे समीप आनेपर 'तुम मुझको मार नहीं सकते, मैं महामृत्युञ्जयका पाठ करता हूँ' यह कहते हुए मैंने नीचे लिखे महामृत्युञ्जयका

पाठ करना प्रारम्भ किया। यह तो स्मरण नहीं कि कितने मन्त्रोंका जप किया; किंतु इतना याद है कि कुछ ही मन्त्रोंका जप करते ही वह मूर्ति पीछे हट गयी और मुझे एकलिङ्ग महादेवके दर्शन हुए। मेरा ज्वर उसी दिन कम हो गया और मैं अपने आपको स्वस्थ अनुभव करने लगा। यद्यपि अभी दुर्बलता बहुत है, किंतु शरीर निर्मल हो गया है।

मन्त्र यह है—

'अघोरेभ्योऽपि घोरेभ्यः घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते, अस्तु तत्पुरुषाय विद्महे धियो रुद्रः प्रचोदयात्।'

आशा है 'कल्याण'के पाठक इस मेरे रोगके अनुभवसे लाभ उठावेंगे।

(कल्याण वर्ष २४, पृष्ठ ११९६)

******

एक महात्माके सदाचार-सम्बन्धी विचार तथा उनके जीवनकी कुछ घटनाएँ*

(उनके एक सत्संगीसे प्राप्त)

व्यवहार तथा परमार्थ अथवा इहलोक या परलोकके सुखके लिये सदाचार और शुद्ध व्यवहार ही मुख्य साधन है। तप, तीर्थ, दान, यज्ञ तथा ईश्वराधन आदि जितने कल्याणके साधन हैं, सब सदाचारपूर्वक ही सफल हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। शुद्ध व्यवहार जाननेके लिये विशेष सूक्ष्म दृष्टि होनी चाहिये। ऐसा उनका निश्चय था। उनके इस भावको प्रकट करनेके लिये नीचे उनके कुछ विचार तथा कुछ जीवनकी घटनाएँ दी जाती हैं। पहले उनके गार्हस्थ्यसम्बन्धी विचार लिखता हूँ—

१—अपने पूर्व-जीवनमें वे रेलवे-सर्विसमें थे। उस समय रेलवे-विभागसे उन्हें जो तेल जलानेको मिलता था उसमेंसे खर्च करनेपर जितना बच रहता था उसे वह लौटा दिया करते थे। तथा रेलवेसे मिले हुए कागजको भी व्यर्थ खर्च नहीं करते थे।

---

* [जिन महात्माजीके विचार तथा उनकी जीवन सम्बन्धी घटनाएँ यहाँ दी जाती हैं उनका देहान्त हो चुका है। उन्होंने अपना नाम प्रकाशित करनेकी लेखकको आज्ञा नहीं दी थी। जनताको कल्याणकी दृष्टिसे यहाँ लेख दिया जाता है]

२—पिताजीने मरते समय आपसे एक बहुमूल्य आभूषण लेनेको कहा तो आपने यह सोचकर कि हम दो भाई है अतः मैं अकेला इसे नहीं ले सकता, उसे लेना अस्वीकार कर दिया।

३—मरते समय पिताजीने आज्ञा दी कि एक ब्राह्मणके मेरे पास छः सौ रुपये रह गये हैं; उस ब्राह्मणका शरीर छूट गया है और अब उसका कोई समीपी सम्बन्धी भी नहीं है; अतः तुम उसका रुपया किसी धर्मकार्यमें लगा देना। पिताजीकी मृत्युके पश्चात् एक साझेका मकान बेचती बार आपने अपने भाईसे कहा, 'भाई ३००) तू ही दे दे और ३००) मैं लगा दूँगा। उससे पिताजीकी आज्ञाका पालन हो जायगा। उन्होंने कहा—'तुम अपना ३००) धर्मार्थ लगा दो, मैं अपना लगा दूँगा।' अपने भागके ३००) का महात्माजीने एक शिवमन्दिर बनवा दिया। बहुत दिन बीतनेपर भी जब भाईने न तो रुपया धर्मादिमें लगाया और न यह आशा ही दिखलायी दी कि वह लगावेगा, तो उन्होंने अपने पाससे ब्राह्मणके नामसे ३००) गौशालामें जमा करा दिये। इस प्रकार सरकारी अथवा बिरादरीका किसी तरहका दबाव न होनेपर भी उन्होंने केवल पिताकी आज्ञा तथा धर्म-कर्तव्यको ही मुख्य समझकर दूसरेके हिस्से तीन सौ रुपये अपने पाससे लगा दिये।

४—एक बार एक रिश्तेदार इनके मकानके आगे गलीमें इस उद्देश्यसे मिट्टी डालने लगा कि धीरे-धीरे चबूतरा हो जानेसे उसपर अपना अधिकार हो जायगा। आपने उसे हटा दिया और कहा कि 'हम किसीकी जमीन नहीं दबाते। उसने समझाया कि 'और लोग भी तो ऐसा करते ही हैं।' इसपर महात्माजीने कहा—'यदि अन्य लोग कोई बुरी चीज खाने लगें तो क्या हमें भी खानी चाहिये।'

५—एक बार आप ५००) देकर किसी दूकानदारके साथ साझी हुए। आपको इससे २५) मासिककी आमदनी थी। किन्तु एक दिन ग्राहकोंके साथ उसका अन्याय देखकर आप अपने ५००) लेकर उससे अलग हो गये।

६—आप कहा करते थे कि कई आदमियोंने मुझे मेरी रकम नहीं दी, परन्तु मैंने किसीके दाम नहीं रक्खे। सदाचारका यही उद्देश्य है कि दूसरोंकी कठोरता सहन करना और स्वयं कठोरता न करना।

७—एक बार आपने किसी दूकानदारसे एक पैसेकी कोई चीज

ली। उस समय पैसा आपके पास न था, इसलिये दूकानदारने कहा कि फिर दे देना। उसी रातको अकस्मात् आपको ज्वर हो गया तो आप चिन्ता करने लगे कि कहीं मरनेके पश्चात् पैसा देना न रह जाय। अतः सवेरा होते ही आप सबसे पहले उसका पैसा दे आये।

८—आप खोटा सिक्का चलाना अच्छा नहीं समझते थे। यदि आपके पास कोई आ जाता तो आप उसे तोड़ देते थे और यदि उसकी धातु अच्छी होती तो किसी गलानेवालेको कम दामपर दे देते थे।

९—एक बार आपने अजमेरके अनाथालयको सौ रुपये दिये। अनाथालयके वार्षिकोत्सवपर आपको इस उद्देश्यसे बुलाया गया कि आप उत्सवके अधिवेशनमें अनाथोंकी उन्नतिके लिये अपना मन्तव्य प्रकाशित करें। उस समय उसके उत्तरमें आपने ५) का मनीआर्डर भेजकर लिख दिया कि 'जिस प्रकार मैंने ५) रेलवेको न देकर अनाथोंकी सेवामें भेजे हैं वैसे ही दूसरोंको भी करना चाहिये—यही मेरी सम्मति है।'

१०—आप अपने या दूसरेके बिना टिकिट रेलमें बैठनेके अत्यन्त विरोधी थे।

११—रेलवे-सर्विसमें रहते समय यदि कोई साधु गाड़ीमें बैठनेका सवाल करता तो आप अपने पाससे उसे एक स्टेशनका टिकिट दिलवा देते थे।

१२—आपको यदि कोई परोपकारका कार्य सौंपा जाता था तो उसे बड़े ध्यानसे करते या कराते थे, क्योंकि वैसा न करना वे विश्वासघात समझते थे। आप कहा करते थे कि परोपकारमें दो प्रकारके मनुष्य सम्मिलित होते हैं। एक स्वार्थी—वे अपना स्वार्थ चाहते हैं, इसलिये कामके नहीं, और दूसरे निःस्वार्थी—वे उदासीन रहते हैं, इसलिये कामके नहीं। यदि कोई मनुष्य निःस्वार्थभावसे तत्परतापूर्वक काम करनेवाला हो तो वह उत्तम है।

१३—एक मनुष्य आपसे बाजारसे चीजें मँगवाया करता था। जब आप सौदा लाते तो वह कहता कि यह तो कामकी नहीं। तब इन्हें वह चीज स्वयं अपने पास रखनी पड़ती। ऐसा कई बार हुआ; परन्तु इन्होंने उसकी चीजें लाना नहीं छोड़ा और उसने अपना स्वभाव नहीं बदला।

१४—आपने किसी प्रसङ्गमें एक मनुष्यसे १०) मासिक देनेको कहा। उस समय आप महीनेकी पहली तारीखको ही १०) का मनीआर्डर करा दिया करते थे। एक दिन इस प्रसङ्गमें आपने अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकाशित किया—जो आवश्यकता पड़नेपर उधार लेकर बिना माँगे ही पहुँचा दे वह उत्तम पुरुष है, जो माँगनेपर दे वह मध्यम है और जो रकम पास होते हुए भी बार-बार फेरे कराकर दे वह निकृष्ट है।

१५—एक बार आपको स्टेशनपर बदला गया। वहाँ रहनेवाला पहला बाबू किसी आदमीको किसी धर्म-कार्यके लिये स्टेशनका तेल दे दिया करता था। उस बाबूके बदल जानेपर वह आदमी इनके पास भी तेल लेने आया। परन्तु इन्होंने मना कर दिया। उस व्यक्तिने आपका उद्देश्य न समझकर आपसे आग्रह किया और पहले बाबूका दृष्टान्त भी दिया। तो भी महाराजजीने न माना। तात्पर्य यह कि आप दूसरेकी वस्तु चुराकर दान करनेके विरोधी थे।

१६—एक मनुष्य सन्तोंके पास बढ़िया कपड़ा लाया। उस समय आप सन्तोंके पास आया-जाया करते थे। ऐसा कपड़ा देखकर आपको उसके विषयमें सन्देह हुआ। आपने उससे पूछा, 'ऐसा कपड़ा बाजारमें भी मिलता है या नहीं?' उसने कहा, 'यह तो खास तौरसे मँगवाया हुआ है' इसपर आपने दूसरे सन्तोंसे कहा कि 'यह कपड़ा सन्देहयुक्त यानी चोरीका है।' तात्पर्य यह है कि आप चोरीका माल दान करने अथवा स्वार्थ या लोभवश बिना आगा-पीछा सोचे ले लेनेको बुरा समझते थे।

१७—आप कहते थे कि मेरे पिताजीने मेरी दस वर्षकी आयुके भीतर ही मुझे भगवद्गीता, विष्णुसहस्रनाम, शिवमहिम्नःस्तोत्र और गङ्गालहरी—ये चार पुस्तकें पढ़ा दी थीं।

आपके सदाचारविषयक विचार सूक्ष्म थे। आपके साधु हो जानेपर मुझे कुछ काल आपके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय आपके व्यवहार और उपदेश जो प्रायः मेरे सम्मुख हुए थे उनमेंसे कुछ आगे लिखता हूँ।

१—एक बार आपने किसी आदमीसे औषधके लिये मिश्री मँगवायी। मिश्री लानेपर आपने उसे हाथपर जाँचा। उस जाँचसे आपको मिश्री कुछ

अधिक प्रतीत हुई। तब आपने उस आदमीको फिर मिश्री तुलवानेके लिये भेजा और ठीक आवश्यकतानुसार लानेपर ही उसे लेना स्वीकार किया।

२—एक बार महात्माजी एक बगीचेमें ठहरे। उस बगीचेसे आप कभी-कभी पोदीना ले लिया करते थे। एक दिन आपको पता लगा कि पोदीनामें पानी दूसरेका चुराकर दिया जाता है तबसे आपने पोदीना लेना बन्द कर दिया।

३—कुछ रोगी होनेके कारण आप अपने लिये दवाकी शीशी आदि भी रखते थे। एक दिन मैं लघुशंकाको गया। वहाँ मुझे एक डाट पड़ी मिली। मैंने उसे इस उद्देश्यसे उठा लिया कि महात्माजीके काम आ जायगी। जब महात्माजीसे कहा कि 'यह डाट पड़ी थी, मैं ले आया हूँ' तो यह बात सुनकर आप प्रसन्न नहीं हुए और बोले—'आज यदि डाट उठा लाया है तो कल बोतल उठा लानेकी सम्भावना है।' ऐसा सुनते ही मैं डाट वहीं रख आया।

४—एक बार चिम्पीकी टूँटी लगवानी थी। एक कारखानेके प्रबन्धकने कहा कि मैं अपने कारखानेमें आदमियोंसे लगवा दूँगा, तो महात्माजीने उससे कहा कि अपने मालिकोंसे पूछकर लगवाना और चिम्पी बन जानेपर मुझे आज्ञा दी कि कारखानेके आदमीको आना न पड़े, आप ही जाकर चिम्पी ले आना।

५—आप दूसरेके किरायेसे लम्बी-लम्बी यात्राएँ करना अथवा ब्राह्मणसे सेवा लेना अच्छा नहीं समझते थे। तथा किसी अस्वतन्त्र स्त्री अथवा लड़केसे कोई वस्तु घरवालोंकी सम्मतिके बिना नहीं लेते थे।

६—आपकी शिक्षा थी कि साधु अवस्थामें हमारा कोई भी व्यवहार, जिसका बोझा दूसरोंपर है, आवश्यकतासे अधिक नहीं होना चाहिये। चाहे जलकी कितनी ही बहुलता हो, किन्तु स्नान करती बार आप उतना ही जल बर्तते थे जितना कि दामोंसे आया हुआ जल काममें लाते थे।

७—एक बार माली फल लाया; किन्तु आपने यह सोचकर कि मालिककी आज्ञाके बिना मालीसे फल लेना ठीक नहीं है, उन्हें नहीं लिया।

८—आपकी किसी बातको, अपनी सफलता होनेपर यदि कोई आदमी सिद्धिमें सम्मिलित करता तो आप प्रसन्न नहीं होते थे; कभी-कभी तो साफ

कह भी देते थे कि 'मैं सिद्ध नहीं हूँ।'

९—यदि आप किसी दीन पुरुषकी सहायता करते तो आपको उसके आचरणोंको न देखकर उसकी दशाको ही देखते थे, तथा किसीको थोड़ी चीज भी देते तो आदरसे देते थे।

१०—आप दूसरोंके समयका भी बहुत ध्यान रखते थे और कहा करते थे कि यदि हमें दूसरेकी प्रतीक्षा करनी पड़े तो चिन्ता नहीं, पर दूसरा हमारी प्रतीक्षा न करे।

१२—आप कहा करते थे—'हमारा कोई भी आचरण ऐसा न हो कि जिसमें प्रशंसा या वाहवाहीकी इच्छा हो।'

१३—आपका कथन था—'ईश्वर फल देनेवाला और सर्वव्यापक है; किसी भी कर्मके फलसे हम बच नहीं सकते। इसलिये लोगोंसे अपने कर्मोंको छिपाना व्यर्थ है।'

१४—कोई पुरुष सांसारिक अथवा पारमार्थिक बात पूछता तो—वह अधिकारी हो अथवा अनधिकारी—आप केवल इस उद्देश्यसे कि इसका चित्त प्रसन्न हो, उसे सरल और सीधे भावसे उत्तर दे देते थे।

१५—एक दिन आपने कहा—'यदि किसीको छटाँकभर सुख मिले और हमें सेरभर दुःख उठाना पड़े तो हमें दुःख उठा लेना चाहिये।'

१६—यदि रोगी दशामें कोई पुरुष आपके दर्शनकी अभिलाषा प्रकट करता तो आप चाहे कितनी ही दूर हों उसके पास इस उद्देश्यसे चले जाते कि जिससे उसका मन मुझमें न रह जाय।

१७—आतुरदशामें आप कहा करते थे कि रोगमें आत्माकी असंगताके विचारसे ढाढस मिलता है, देहके मिथ्यात्वसे नहीं।

१८—अहंकार और परदोषदर्शन आत्मोन्नतिमें बाधक है।

१९—एक बार एक मनुष्यने अपनी बात कहकर आपसे कहा कि 'किसीसे कहना मत'। पीछे वह बात एक पूज्य महात्माके पास चली तो कह दिया कि यह बात ऐसी नहीं है, पर जैसी है वैसी भी मैं कह नहीं सकता, क्योंकि उसने मना कर दिया है।

२०—अपने निर्वाहके लिये आप पुराने कपड़े और साधारण वस्तुओंके लेनेपर ही दृष्टि रखते थे।

२१—यदि कोई पुरुष आपसे अनुचित बात कहता तो उसका उत्तर सूझते हुए भी आप बात बढ़ जानेके भयसे कभी-कभी चुप हो जाते थे।

२२—यदि किसी बातमें आपका किसीसे विरोध होता तो वह उतने ही अंशमें रहता था। यदि उसकी कोई प्रशंसनीय बात होती तो उसका भी उदार चित्तसे वर्णन करते थे।

२३—एक दिन किसीने कहा कि 'आप दुबले हो गये हैं, कुछ खाया कीजिये।' इसपर स्वामीजीने कहा—'यदि दो रुपये तोलेकी वस्तुसे शरीर बचे तो मैं इसे मरने नहीं दूँगा, और यदि टके सेर या अधेला सेरकी भी वस्तुसे मोटा होगा तो मैं इसे मोटा नहीं करूँगा।'

२४—आप रोगीदशामें कहा करते थे—'मैंने पाँच विकार (सत्ता, जन्म लेना, बढ़ना, बदलना और क्षीण होना—ये पाँच विकार तो पास कर लिये हैं, छठा विकार मृत्यु रह गया है।) तो पास कर लिये हैं, छठा रह गया है।'

२५—यदि कोई कहता—'महाराज! आप दुबले हो गये हैं।' तो आप कहते—'अरे! कुछ दिनमें यह भी न रहेगा।'

२६—आतुरदशामें आप कहा करते थे—

खोले हुए हों हाथ जहाँसे चलके कूच।
लिपटी हुई कफनमें कोई आरजू न हो॥

२७—**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्॥

यह मन्त्र आप अधिकतर कहा करते थे।

२८—कभी कहते—'यह शरीर दिनभरमें कई रंग पलटता है' [आत्मा सदा एकरस रहता है]—यह बात आत्माकी असंगताकी सूचना देती है।

२९—पदार्थोंके संग्रहमें जो आपकी अरुचि थी उसके सम्भवतः निम्नलिखित कारण थे—

(१) धर्मविषयक सूक्ष्म विचार होनेसे उनका ऐसा भाव रहता था कि अधिक पदार्थ लेनेका हमारा कोई अधिकार नहीं है—ऐसा मेरा विचार है।

(२) आपमें शास्त्रसम्बन्धी पदार्थोंके दोष तथा मिथ्यात्वबुद्धिके संस्कार भी काफी थे।

(३) रोगी होनेके कारण भी ऐसा होना सम्भव है।

३०—यदि कोई साधारण मनुष्य आपके सम्मुख अयुक्तियुक्त शंका करता तो प्रथम उसकी शंकाको ठीक करके उसका अनुवाद कर देते थे, जिससे वह अनुवादसे ही प्रसन्न हो जाता था—पीछे उसका उत्तर देते थे—ऐसा भी उनका स्वभाव देखा गया था।

३१—आपका भाषण कुछ धीमा, स्पष्ट और बीचमें कुछ रुकता हुआ था, जिससे अनुमान होता था कि उनके हृदयमें जो अहिंसा और सत्यका आदर था वह वाणीको धीरे-धीरे रोकता था।

३२—कभी-कभी अपनी जाति और सम्प्रदायकी बात चलाने लगते। एक दिन मैंने इस प्रसङ्गको रोकनेको कहा तो कहने लगे, 'मैं इसलिये इन बातोंको छेड़ देता हूं, जिससे कोई मनुष्य धोखेसे मेरा सत्कार आदि न करे।'

३३—आपका कहना था—जहाँ दूसरोंके साथ अपना विचार न मिले वहाँ अपना विचार हटा ले तो शान्ति-ही-शान्ति है।

३४—आपके भाषणसे आपके मनकी स्फुरणाओंका भी कुछ ज्ञान होता है। आपके जो सङ्कल्प होते थे कोमल होते थे। आप उन्हें सहजहीमें बदल भी दिया करते थे। जिससे आपके मनकी स्फुरणाओंका संयत होना सिद्ध होता है।

३५—आपका लेख और भाषण संक्षिप्त, सरल तथा भावपूर्ण होता था। लेख या भाषणका बढ़ाना, कठिन शब्दोंको व्यवहारमें लाना अथवा प्रकरणकी लम्बाईमें अर्थको खो देना आप अच्छा नहीं समझते थे।

३६—वृद्ध और आतुरावस्थामें आप कहा करते थे—

छान पुरानी हो गयी ठौर-ठौर ते छयी।
अग्रदास गोविंद भजनकर नयी होनते रही॥

३७—आपके अहिंसा, धर्मपरायणता तथा सङ्कोचके भाव बढ़े हुए थे जिनका परिचय आपने मरण-शय्यापर पड़े हुए भी व्यवहारद्वारा दिया था। महापुरुषोंके विचार इतने पुष्ट और स्वाभाविक होते हैं कि मरणका कष्ट भी उन्हें दबा नहीं सकता; आगे इन्हीं भावोंको प्रदर्शित किया जाता है—

(१) **अहिंसाका भाव**—आपकी रुग्णावस्थामें एक सज्जन प्रायः

आपके समीप रहा करते थे। आपके मरणकालसे कुछ पूर्व उनके सिरमें दर्द-सा होने लगा। उस समय आपने उनसे कहा—'जा, सो जा।' इस प्रकार अपनी मरणदशाके कष्टको गौण करके उसके दुःखका ख्याल किया।

(२) **धर्मपरायणता और सङ्कोच**—मरनेसे पूर्व आपने कपड़े उतार दिये और साधारण वस्त्रोंमें ही देहत्याग किया, इससे आपका यह भाव था कि ये वस्त्र किसी योग्य कार्यमें लग जायँ—मैं मरतीबार इतने कपड़े लेकर क्यों मरूँ?

३८—आप शरीरसे दुबले-पतले थे और साधारण श्वेत वस्त्र पहना करते थे, जिससे उनमें कोई बड़प्पन प्रतीत नहीं होता था। आपके रहन-सहन, बोल-चाल और विचार भी बड़े सादे थे, जिनसे आपकी कोई विशेषता नहीं मालूम होती थी। पर इस सादगीके साथ-साथ आपमें बुद्धिमत्ता, व्यवहार-कौशल, विचारशक्ति, वैराग्य, धैर्य, धार्मिक बल और आध्यात्मिक शक्ति भी पर्याप्तमात्रामें थी।

३९—न्यायप्रियताके साथ-साथ आपमें अहिंसा, दया, कोमलता और सर्वात्मकताके भी भाव थे। जिनके कारण इनमें क्रोध या दूसरोंके प्रति अनुचित प्रतिहिंसाके भाव प्रायः नहीं होते थे।

४०—आपका हृदय और मस्तिष्क धर्मका आदर करनेवाला, धर्माधर्मविषयक विचारोंमें निपुण और उन भावोंको बाँटनेमें उदार था। आपकी दृष्टि बाह्य त्यागकी अपेक्षा आन्तरिक त्यागपर विशेष प्रतीत होती थी। कर्म करते हुए भी उनमें अनासक्त रहनेका स्वभाव रखते थे तथा आपके छोटे-छोटे साधारण कार्य भी परिमित और सुव्यवस्थित होते थे, जिससे आपकी असाधारण कार्यकुशलता और महत्ताका परिचय मिलता है।

४१—यदि कोई मनुष्य आपको कोई अनावश्यक वस्तु भेंट करता तो पहले उसे नम्र और मधुर शब्दोंमें लौटा देनेको कहते। यदि वह न मानता तो उसे प्रसन्न करनेके साथ-साथ खुले शब्दोंमें यह भी कह देते कि 'यदि हमारे काम न आयी तो किसीको दे देंगे'—ऐसा भी उनका स्वभाव देखा गया था।

४२—यदि कोई मनुष्य आपके पास मनीआर्डर भेजता और कहता कि इसे वापिस कर दो तो कहते कि 'वह दुःख मानेगा।' आप वह रुपया

ले लेते और उसके सदुपयोगका उपाय ढूँढ़ते तथा उसे किसी शुभकार्यमें लगा देते। तात्पर्य यह है कि दूसरोंको प्रसन्न करनेके लिये वे अपने कष्ट और त्यागकी परवा नहीं करते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि सम्भवतः अपने मानसिक भावोंपर ही रहती थी 'इस विषयमें लोग हमें क्या कहेंगे?' इसपर नहीं।

४३—कोई सज्जन आपको भक्तजी, कोई महात्माजी, कोई ब्रह्मचारीजी, कोई स्वामीजी, कोई चिट्टेवस्त्रवाले और कोई लालाजी कहकर पुकारते थे, क्योंकि आपका वेश ऐसा ही सन्दिग्ध था मानो आप 'सन्दिग्धः सर्वभूतानाम्' और 'गुप्तं ममेमं जानातु जनः' इन दो शास्त्रवाक्योंको प्रमाणित कर रहे थे।

४४—यदि आपसे विद्या और त्यागमें कम कोई साधारण मनुष्य भी लाभ उठानेकी इच्छा करता और किसी कारणवश आपके पास आनेमें सङ्कोच मानता या न आ सकता तो ऐसा भी देखा गया था कि आप उसके पास जाकर उसे यथायोग्य लाभ पहुँचा देते थे।

४५—आप सत्यसे भी अहिंसाको अधिक मानते और अहिंसासे भी स्वयं दुःख उठाकर दूसरोंको सुख पहुँचाना विशेष समझते थे—ऐसा मेरा विचार है।

४६—यदि आपको शिक्षाके रूपमें अपने जीवनकी कोई विशेष घटना सुनानी होती तो उसे ('एक वैश्यने ऐसा किया'—इस प्रकार) परोक्षरूपसे भी कह दिया करते थे, जिससे अपने मुखसे अपनी प्रशंसा भी न हो और उस बातका प्रचार भी हो जाय।

४७—कभी आप सवेरे ही पत्र लिखने बैठ जाते। इससे आपका यही अभिप्राय प्रतीत होता था कि महात्माओंका दूसरोंको आश्वासन देना तथा अपना कर्तव्य-पालन करना भी एक प्रकारका भजन ही है।

४८—एक बार एक कारखानेमें आपको कोई वस्तु लेनी थी। उसका प्रबन्धक आपका प्रेमी था। उसने उन्हें वह चीज बिना दाम देनी चाही। परन्तु आपने न लिया, क्योंकि वह तो नौकर था, मालिकोंकी वस्तु उनसे चुराकर देता। पीछे मोल देनेपर ले आये; परन्तु इसपर भी मुझसे कहा—'उस वस्तुके लानेमें एक त्रुटि रह गयी है, जिसे मैंने नहीं छेड़ा, कारखानेके नौकरोंके लिये इसकी वस्तुओंको मोल लेनेमें खास रिआयत है, इस बाबूने

मुझे भी उस रिआयती दरसे ही यह वस्तु दी है; परन्तु यह रिआयत तो इन्हें अपने लिये मिली है, औरोंके लिये नहीं।'

४९—एक बार रेलगाड़ीद्वारा आपको दूसरी जगह जाना था। आपने स्टेशनसे टिकिट खरीदे। वहाँका बाबू आपपर श्रद्धा रखता था। उसने कहा—आप टिकिट लौटाकर अपने दाम वापस कर लीजिये, वह आदमी वहाँ जा रहा है आपको बिना टिकिट वहाँ पहुँचा देगा। उस साथ जानेवाले आदमीने भी कहा—'हाँ, मैं ले जाऊँगा।' परन्तु आपने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया।

५०—एक स्टेशन बाबू आपसे गीता पढ़ने आया करते थे। उन्हें आपके पास आता देख एक आदमीने अपनी तीर्थयात्राके लिये सवाल किया। बाबूने कहा कि 'कुछ स्टेशनतक मैं गार्डसे कह सकता हूँ, यह आपको बिना टिकिट ले जायगा।' इस विषयमें स्वामीजीने मुझसे कहा—'ऐसा करनेसे चार मनुष्य पापी होंगे—(१) यात्रा जानेवाला, (२) गार्डसे कहनेवाला बाबू, (३) गार्ड और (४) आगेके स्टेशनपर जिस बाबूसे गार्ड इसे छोड़ देनेके लिये कहेगा।'

५१—एक बार एक सज्जनने आपको अपनी रुग्णावस्थामें याद किया। आप उसके पास गये। उसने एक पुस्तककी प्रशंसा की और आपसे उसे देखनेके लिये कहा। वह पुस्तक आपकी पहले देखी हुई थी, परन्तु आपने वहाँ कुछ भी नहीं कहा, उसका मन रखनेके लिये पुस्तक ले आये और कुछ दिन अपने पास रखकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार उसे प्रसन्न करनेके लिये आपने वहाँ तो अपनी वाणीको रोका और फिर वहाँसे पुस्तक लाने तथा उसे फिर लौटाने या किसीके हाथ भेजनेका झंझट स्वीकार किया।

५२—यदि आवश्यकता पड़नेपर आप किसी दूसरे व्यक्तिसे कोई पात्र आदि लेते तो जहाँतक होता उसे सुधारकर लौटाते और काम हो जानेपर उसे तुरन्त लौटा देते तथा उसे उसी दृष्टिसे बर्तते जैसे कि अपनी वस्तु बर्ती जाती है।

५३—यदि कोई वस्तु दोषयुक्त होती और उसकी अपने काम आनेकी सम्भावना न होती तो आप या तो उसे फेंक देते या किसी दूसरेको दे देते और उससे कह देते कि यह वस्तु हमारे कामकी नहीं है, इसमें अमुक

दोष है, यदि तेरे काम आ जाय तो बरत लेना, नहीं तो फेंक देना।

५४—एक बार एक धर्म-कार्यके लिये कई सज्जनोंने कुछ रुपया दिया। उस कामको आरम्भ करनेपर उसमें सफलता न हुई और उसे बीचहीमें छोड़ना पड़ा। कुछ रुपया तो उस कार्यमें लग चुका था और कुछ शेष था। इन बचे हुए रुपयोंको दूसरोंकी सम्मति किसी अन्य धर्म-कार्यमें लगानेकी थी। परन्तु आपने इसे अस्वीकार किया और उसे हिस्सेवार दानदाताओंको ही लौटानेकी सम्मति दी। इससे आपका यह अभिप्राय था कि जो रुपया जिस कार्यके लिये लिया गया है उसे उसी कार्यमें लगाना न्याय है, अन्यथा उसे लौटा देना ही उचित है।

५५—एक बार एक मकानके बनवानेमें आप कुछ देख-भाल करते थे। उसके लिये जङ्गलसे लकड़ी मँगवायी गयी। वह लकड़ी जङ्गलके मालिकसे रवन्ना लेनेपर एक आदमी एक बार ला सकता था। परन्तु वहाँकी प्रथा इसके विरुद्ध भी थी। इनका आदमी भी उस रवन्नासे तीन बार लकड़ी ले आया। खातीने आपसे कहा—'तीन बार तो मजदूर लकड़ली ले आया।' इसपर आपने उसे टोककर कहा—'इसमें लाभ तो मालिकको हुआ तू (खाती) (क्योंकि खाती मजदूरद्वारा मँगवाया करता था।) इस चोरीके पापमें क्यों फँसा?' यह सुनकर वह चुप हो गया; पर एक दूसरे आदमीने कहा—'यह चोरी नहीं है।' तथा किसी दूसरे आदमीका दृष्टान्त देकर कहा कि वे भी तो ऐसा ही करते हैं। तब आपने कहा—'अच्छा यदि चोरी नहीं है तो मैं पत्रद्वारा जङ्गलके मालिकसे पूछता हूँ' तात्पर्य यह है कि 'ईश्वर और धर्मको सामने रखते हुए अपने लाभके लिये गुप्त या प्रकट रूपसे किसीको किसी प्रकारसे कभी हानि नहीं पहुँचानी चाहिये।'

५६—एक मनुष्यने आपसे कहा—'महाराजजी! हमारे पास कोई कच्चा-पक्का (अनुचित कमाईका) पैसा आ जाता है। आप यदि सेवा करा लें तो वह शुद्ध हो जाय।' इसपर आपने उत्तर दिया—'हमारी सेवासे वह शुद्ध नहीं होगा, बल्कि हमें भी तुम्हारे साथ उसका फल भोगना पड़ेगा।'

५७—आप दृष्टान्तरूपसे कहा करते थे—'खसम भी प्यारा और पूत भी प्यारा, फिर सौगन्ध किसकी खाऊँ?' अर्थात् 'संसार भी प्यारा और ईश्वर भी प्यारा, फिर दोनोंका साथ-साथ निबाह कैसे हो?' अतः संसार

और ईश्वर इनमेंसे एकपर मुख्य दृष्टि रखकर दूसरेको गौण समझना होगा; जैसे कि स्त्रीको सौगन्ध खानेके लिये पति और पुत्रमेंसे एकको मुख्य तथा दूसरेको गौण समझना आवश्यक है।

५८—आपकी दूसरेके साथ बात करनेकी शैली बहुत अच्छी थी। उसके शब्द कैसे ही उत्तेजनाप्रद हों आपका स्वभाव उनसे उत्तेजित होकर टोकनेका नहीं था। आप दूसरेकी बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहते थे और फिर सोच-समझकर उसका उत्तर देते थे। इससे उनके मानसिक संयमकी झलक प्रतीत होती है।

५९—आपका हृदय ऐसा कोमल था कि थोड़ी-सी भूल हो जानेपर भी आपको पश्चात्ताप होने लगता था। एक बार अपनी रुग्णावस्थामें आपने कोई व्यावहारिक शब्द—जो इस समय मुझे स्मरण भी नहीं है—कुछ जोर देकर मुझसे कह दिया। उसका आपको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मुझसे कहा कि इसके बदलेमें तू मुझे कुछ कह ले।

६०—एक बार एक मनुष्यने आपको कुछ आवश्यकतासे अधिक देनेका आग्रह किया। उससे पीछा छुड़ानेके लिये आपने उससे कुछ शब्द ('साधुका धर्म बिगाड़ा नहीं करते।') आवेशपूर्वक कहे। किन्तु पीछे पश्चात्तापके रूपमें आपने कई बार मुझसे उस बातका जिक्र किया।

६१—अपनी आतुरदशामें आप कुछ उपदेशप्रद मीठा उपहास भी किया करते थे। एक बार आपकी मरणोन्मुख अवस्थामें कुछ लोग चुपचाप बैठे थे। उस समय आपने मुझे सम्बोधन करके कहा—'काकाः काकान्नु शोचन्ति।' इससे आपका अभिप्राय यह था कि 'जिस प्रकार कौए कौओंके लिये शोक करते हैं, उसी प्रकार मरणोन्मुख मनुष्यको घेरकर उसके सम्बन्धी शोक किया करते हैं।' आप यह भी कहा करते थे कि 'कुछ दिनमें हम भी स्मृतिमें आनेवाले हैं।' कभी किसी स्थानविशेषको लक्ष्य करके कहते हैं 'वहाँ मरनेका स्वाद नहीं है।'

६२—एक बार एक मनुष्यने बड़ी लागत लगाकर एक धर्मशाला बनवायी। परन्तु पड़ोसमें पड़ोसीके कर्मचारीको कुछ देकर थोड़ी-सी भूमि दबा ली। इस बातको लक्ष्य करके आप कहा करते थे—'उसकी यह प्रवृत्ति ऐसी है मानो सोनेकी थालीमें लोहेकी मेख गाड़ दी हो।' अर्थात्

एक ओर तो पुण्यकार्य और दूसरी ओर अनुचित रीतिसे दूसरेका अधिकार हरण करना।

६३—एक उदार सज्जन ब्राह्मणमात्रको अपने पास आनेपर कुछ भेंट किया करते थे। उन ब्राह्मणोंमेंसे कुछ तो चुपचाप लेकर चले जाते और कोई लालच या दरिद्रतासे विवश होकर कुछ और लेनेकी इच्छा प्रकट करते। उस समय वे सज्जन आपेसे बाहर हो जाते और अनाप-शनाप कहने लगते। यह दशा देखकर स्वामीजीने उनसे कहा—'आप यह नकदी देना बन्द कर दें। इसका फल नहीं होगा; आप व्यर्थ अपना रुपया क्यों खोते हैं?' (क्योंकि जिस शुभ कर्मके करते समय क्रोध, अहङ्कार अथवा दूसरोंका चित्त दुखाया जाता है, उसका फल विपरीत ही होता है।)

(कल्याण वर्ष ९, पृष्ठ ११३४)

******

भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज

(लेखक—एक भक्त)

मङ्गलाचरण

हे निम्बार्क दयानिधे गुणनिधे हे भक्तचिन्तामणे
हे आचार्यशिरोमणे मुनिगणैरामृग्यपादाम्बुज।
हे सृष्टिस्थितिपालनप्रभवने हे नाथ मायाधिप
हे गोवर्द्धनकन्दरालय विभो मां पाहि सर्वेश्वर॥

सत्य है, वस्तुके खो जानेपर ही उसका मूल्य समझमें आता है, कितनी भी कीमती क्यों न हो परन्तु जबतक वह हमारे सामने रहती है तबतक हम उसकी महानताका अनुभव नहीं कर सकते।

इसी दृष्टान्तका कटु अनुभव हमें इन दिनों बार-बार हो रहा है। वह दिन हमें कलकी तरह याद है, जब श्रीमहाराज अपने भजनस्थानपर बैठकर सेठ श्रीबसन्तलाल आदिको सदुपदेश दिया करते थे, और हम उन उपदेशोंको यह समझकर नहीं सुनते थे कि श्रीमहाराज नित्य ही उपदेश देते हैं और देते रहेंगे। किन्तु आज यह लिखनेमें भी अत्यन्त कष्ट होता है कि उन कर्ण और आत्माको पवित्र करनेवाले अमृतमय शब्दोंका इस

नश्वर संसारमें अभाव हो गया है। ऋषियोंने इस संसारकी उपमा समुद्रसे दी है। यदि ध्यानसे देखा जाय तो यह उपमा इसके लिये बहुत उपयुक्त है। जिस तरह समुद्रमें वायुवेगसे असंख्य तरङ्गे उत्पन्न होकर फिर उसीमें विलीन होती हैं, उसी प्रकार इस संसार-सागरमें भी अनन्त जीवोंका जन्म और मरण होता ही रहता है। इसके अतिरिक्त समुद्रमें जैसे महाभयङ्कर विष और प्राणदायी अमृत दोनों प्राप्य हैं उसी तरह संसारमें भी ऐसे-ऐसे दुष्ट लोग रहते हैं जिनका नाम लेते भी हृदय काँपता है और साथ ही ऐसे महात्मा पुरुष भी होते है जिनका स्मरण होते ही चित्तमें पवित्रता और शान्तिका अनुभव होता है। समय परिवर्तनशील है, इसी परिवर्तनशील समयके वशवर्ती होकर ऐसे पुण्यकर्मा महानुभाव भी इस संसारमें उत्पन्न होकर अपने चरित्र और सदुपदेशोंसे इस दुःखमय संसारको धन्य करके फिर अन्तर्हित हो जाते हैं। आज हम एक ऐसे ही सच्चे महात्माके जीवन-सम्बन्धी कुछ घटनाओंपर प्रकाश डालते हैं, जिनका जीवन अत्यन्त ही पवित्र और आदर्श था। प्रायः वयोवृद्ध कहा करते हैं कि मरुभूमिमें बहुत कम आदमी श्रीराधेश्यामके नामसे परिचित थे। परन्तु आज इन महात्माके चरित्रप्रभावसे साधारणसे लेकर विशेष व्यक्तितक प्रायः सभी अपने बच्चोंका राधेश्याम नाम रखनेमें गौरवका अनुभव करते हैं। इतना ही नहीं, इन वर्षोंमें जो नवीन मकान बने हैं उनपर भी पवित्र श्रीराधेश्याम नामकी छाप पायी जाती है। ठीक है, महात्माओंके चरित्रका प्रभाव कुछ-न-कुछ तो पड़ता ही है।

हमारे चरितनायक महात्मा राजपूतानानिवासी थे। खेतड़ी नामक उपराज्यके अन्तर्गत चिड़ावा नामक प्रसिद्ध ग्राम है। इसी सौभाग्यशाली ग्राममें श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्रचन्द्रदर्शितमतमार्तण्डविद्वद्वरेण्य भक्तशिरोमणि श्रीराधिका-दासोपनामक पण्डित रामप्रसादजी महाराजने गौड़वंशोद्भव पण्डित लच्छीरामजी मिश्रके घर संवत् १९३३ माघ मासकी कृष्णा अष्टमी रविवारको दिनके लगभग चार बजे शुभ जन्म ग्रहण किया था। ईश्वरके अनुग्रहसे या कोपसे आपकी माताका देहान्त इनके प्रसवकालमें ही हो गया था। किसीको इनके बचने और जीवित रहनेकी आशा न थी किन्तु 'जाको राखे साइयाँ मार न सकिहैं कोय' के अनुसार महात्माजीकी बुआने इनको प्रथम स्तन्य पान

कराया। उन्हीं दिनों महात्माजीकी बुआके भी सन्तान हुई थी। इसलिये दयामयी पिताकी बहिनने ही इनके पालन पोषणका भार अपने ऊपर ले लिया। परन्तु कुछ दिनों बाद ही बुआजीको विशेष कार्य होनेसे ससुराल जाना पड़ा। तब स्नेहोत्कर्षके कारण ईश्वरकी कृपासे वृद्धावस्थामें इनकी स्नेहमयी दादीजीके स्तनोंमें दुग्धका सञ्चार हो गया और इस तरह हमारे महात्माजीका विचित्र शिशुकाल समाप्त हुआ।

भगवान् बड़े भक्तवत्सल हैं, जो कुछ भी करते हैं अपने भक्तकी हितदृष्टिसे ही करते हैं। जिस तरह अबोध बालक भ्रमवश अग्नि और सर्पको पकड़नेको दौड़ता है तो उसके हितेच्छु माता-पिता उसे ऐसे कार्योंसे रोक देते हैं। इसी प्रकार परमपिता परमात्माने भी मरुभूमिके रत्न इन महात्माजीका मन कुटुम्बके मोहसे हटा दिया और बचपनसे ही आप विरक्तका सा जीवन बिताने लगे। महात्माजी जब आठ वर्षके थे तभीसे आप चिड़ावाके प्रसिद्ध मन्दिर श्रीकल्याणरायजीके नित्यप्रति दर्शन करनेको जाया करते और भगवान्‌से अनेक प्रार्थनाएँ करते। अन्तमें कहते कि हे कृपालु! सारे संसारका भला करके मेरा भी भला करना। सत्य है 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'; आगे होनेवाली भक्तिका पूर्वरूप पहलेहीसे होने लग गया था। भक्तिके क्रममें श्रीकेशव काश्मीरी महाचार्यने लिखा है—

आदौ दैन्यं हि सन्तोषःपरिचर्या ततः परम्।
ततः कृपा च सत्सङ्गोऽप्यसद्धर्मारुचिस्ततः॥
कृष्णे रतिस्ततो भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेमलक्षणा।
प्रादुर्भावे भवेदस्याः साधकानामयं क्रमः॥

अर्थात् 'प्रेमलक्षणा भक्ति उदय होनेका यह क्रम है—पहले दैन्य, फिर सन्तोष, परिचर्या, कृपा, सत्सङ्ग, असद्धर्मोंमें अरुचि और तब श्रीकृष्णमें रति, फिर वह प्रेमलक्षणा भक्ति उदय होती है।'

हमारे पूज्य महात्माजीमें उपर्युक्त सभी लक्षण पाये जाते थे। भक्तिके उदयमें नरसी मेहता, मीराबाई, तुकाराम, ज्ञानदेव आदिकी बातें आजतक प्रसिद्ध हैं। श्रीभगवन्नामकी शक्तिके विषयमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं कि—

राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

और भी बहुत-सी उक्तियाँ हैं—

कलियुग केवल नाम अधारा। प्रभु सुमिरो उतरो भव पारा॥

श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्धमें वर्णन किया है कि—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

हमारे महात्माजी भी इसी प्रकार परम भक्त और नामरसिक थे।

हरिनामकीर्तन और भगवद्भक्तिका माहात्म्य अनेक शास्त्रोंमें मिलता है, किन्तु समयाभावके कारण आधुनिक जीव उन्हें नहीं देख सकते। यह विचारकर श्रीमहात्माजीने भगवन्नाम, भगवद्भक्ति, भक्तमहिमा आदि विषयोंपर १ गङ्गाशतक, २ संस्कृत भजनरत्नावली, ३ भाषा भजनरत्नावली, ४ वैराग्यसुधाविन्दु, ५ भक्तिसुधाविन्दु, ६ विज्ञानसुधाविन्दु, ७ हरिनामोपदेश, ८ हरिजनमहिमोपदेश, ९ भक्तनामावली, १० श्रीमत्सद्गुरुजीवनचरित्र आदि ग्रन्थोंकी रचना की। यह सब पुस्तकें मुद्रित हैं। इनके सिवा सिद्धान्तसुधाविन्दु, भक्तमन्दाकिनी, श्रीमदाचार्यस्तुति आदि दो-तीन पुस्तकें अमुद्रित भी हैं। श्रीमहात्माजी सिद्धान्तषट्पदी, विनयपद्यावली और श्रीकृष्णपरत्व यह तीन पुस्तकें और लिखे गये हैं। वे शीघ्र छप सकती हैं। श्रीमहात्माजीकी बनायी हुई इन पुस्तकोंके मनन करनेसे जीवका कल्याण हो सकता है। इन्हींकी कृपासे सेकसरिया संस्कृतपाठशाला चड़ावामें सन्ध्याको हरिनामसङ्कीर्तन हुआ करता है।

महात्माजी मातृहीन होनेसे कुटुम्बकी ओर कम ध्यान रखते थे। आप प्रायः पढ़नेमें ही तल्लीन रहा करते थे। आपके विद्यागुरुओंके नाम इस प्रकार हैं—पं० स्नेहीरामजी, न्यायकेसरी पं० रामजी लालजी, पं० श्रीरामेश्वरजी मिश्र, पं० श्रीगणेशनारायणजी, ज्योतिषके गुरु पं० घनश्यामदासजी और श्रीलक्ष्मणजी पुजारी। यों तो आपने जिनसे एक अक्षर पढ़ा उनमें भी गुरुभाव रखते थे, जैसे पं० शुकदेवजी। आप कहा करते थे कि चार-पाँच दिनोंतक मैं गुरुदेव श्रीशुकदेवजीके पास पढ़ने गया था। उपर्युक्त महानुभावोंकी असीम कृपासे महात्माजी शीघ्र ही व्याकरण, न्याय और ज्योतिषके बड़े विद्वान् हो गये। महात्माजी श्रीराधेश्यामके अनन्य भक्त थे, दैन्यभावका आपमें पूरा विकास था, इसीलिये आप शास्त्रसम्बन्धी प्रतिभाको सदैव गुप्त रक्खा करते

थे। गुप्त रखनेका कारण ठीक ही था, जैसे श्रीभगवतरसिकजीने अपनी वाणीमें लिखा है कि—

कुं० विद्या रूप महत्त्व कुल, धन जोबन अभिमान।
छः कंटक देखै जहाँ, रहे न भक्ति निदान॥
रहे न भक्ति निदान स्वाँग सब नगर नारिके।
विषयिन हाथ बिकाय नहीं रिझवन भतारके॥
जग बंचनके हेत सब गुण सीखै अरु विद्या।
भगवत भक्ति बिकाय कहा कीन्हीं पढ़ विद्या॥

और भी किसी कविने कहा है कि—

प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा गौरवं रौरवोपमम्।
अभिमानं सुरापानं त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

इन्हीं कारणोंको हृदयमें रखते हुए आपने अपने विद्याचमत्कारको पूर्णरूपसे संसारके सामने नहीं आने दिया।

यद्यपि मारवाड़ीसमाजकी बालविवाहसम्बन्धी प्रथाके अनुसार महात्माजीका विवाह भी छोटी अवस्थामें ही हो गया था, परन्तु सांसारिक कार्य आपके भक्तिमार्गमें कुछ भी बाधक नहीं हो सके। श्रीमहात्माजीको दूसरोंपर भारस्वरूप होकर रहना सदा ही बुरा मालूम होता था। यद्यपि महात्माजीके पिताकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक थी तथापि श्रीमहात्माजीको केवल बीस वर्षकी अवस्थामें जीविकोपार्जनके लिये कटिबद्ध हो जाना पड़ा। चार वर्ष तो अनियमितरूपसे आप यत्र-तत्र कार्य करते रहे, पश्चात् संवत् १९५७ से मलसीसर श्रीजानकीदासजी झुँझनूवालाकी पाठशालामें लगभग दो वर्षतक अध्यापन-कार्य करते रहे। फिर रामगढ़के प्रसिद्ध सेठ राधाकृष्णजी पोद्दारके सुपुत्रोंको लगभग छः मास रामगढ़ रहकर पढ़ाया। आपने एक दिन व्रजवासके लिये श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रार्थना की तो दूसरे दिन ही अचानक सेठोंके पुत्रोंसहित आपको श्रीमथुरा जानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। आपकी वह मारवाड़ी भाषाकी प्रार्थना यह थी—

भवसिन्धु डूब रह्यो दीनबन्धु तुम आकर क्यों नहिं हेरो।
चोरासी लाख सो जूण कूण रहि बाकि जहाँ नहिं फेरो॥
मैं भ्रमत-भ्रमत भवजाल भयो बेहाल मास लियो मेरो।

कामादि शत्रु बल पाय आय कीनो हिय माहीं डेरो॥
अब तो कर करुणा नाथ साथ स्यों व्याकुल भयो बहुतेरो।
तुम सुनो श्याम सुखरासी, अँखिया दोउ दरश पियासी॥
परब्रह्म पूरण पुरुषोत्तम नाथ आप मैं चेरो॥ ॥ भव० ॥ १॥
गजराज पड़ी अति भीर नीरमें करत युद्ध जब हार्‍यो।
जौभर ही बाहर रही सूँड तब हरि हरि नाम पुकार्‍यो॥
सुन टेर करी तुम म्हैर फेरके चक्र ग्राहके मार्‍यो।
अब धर्णी बनी क्या घनी दासको जो नहिं आय उबार्‍यो॥
तुम दीननके हितकारी, गुण गाय गाय श्रुति हारी।
श्रीनन्दकुँवर वृषभानुसुता दोउ हियमें करो बसेरो॥ भव० ॥ २॥
जो अपराधी जानत मोय तो क्यूँ कालिय राख्यो।
जिन मार-मार फण बार-बार श्रीअङ्गनको रस चाख्यो॥
सिरधार चरण हुंकार भार कियो दूर क्रूर मन माख्यो॥
कर नृत्य कियो है सनाथ भयो खगनाथ पूज्य भय नाख्यो॥
ऐसे भक्त कई तुम त्यारे, क्यों मोसे दीन बिसारे॥
तुम मनकी जाननहार बार क्यूँ करो हरो जगझेरो॥ भव० ॥ ३॥
है 'राधादास' अजान मान तजि नाथ भयो अब तेरो।
प्रभु झूल रही दरियाव नाव भरि आव डरै मन मेरो॥
अब पार करो सरकार अहो इखत्यार तुम्हें सब केरो।
तुम जानत हो सब बात मात ज्यूँ कियो उपकार घनेरो॥
तुम सब प्रकार मम स्वामी, मैं कुटिल दीन खल कामी।
भवभीत चरणमें आय छिप्यो अब तुम ही शरणो मेरो॥ भव० ॥ ४॥

भगवान्‌की असीम कृपासे श्रीमथुराजीमें श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरमें श्रीमान् सेठोंके पुत्रोंको पढ़ाने लगे। फिर वहाँसे आप जैनियोंको पढ़ानेके लिये रतलाम, भड़ौंच चले गये। लगभग एक वर्ष वहाँ रहे। तदनन्तर वहाँसे श्रीप्रेमसरोवरपर श्रीलक्ष्मीनारायणजीकी पाठशालामें विद्यार्थियोंके अध्यापनार्थ रहने लगे। लगभग सं० १९६० में प्रेमसरोवरकी पाठशालामें पढ़ानेके समय ही श्रीगह्वरवनमें रहनेवाले महात्मा श्रीरणछोड़दासजीसे आपने मन्त्रदीक्षा ग्रहण की। महात्मा श्रीरणछोड़दासजीकी कृपासे आपको पुत्र प्राप्ति भी हुई। आप

भक्तनामावली पृष्ठ ५४ में लिखते हैं कि 'जब मैं प्रेमसरोवरपर श्रीलक्ष्मीनारायणजीकी पाठशालामें विद्यार्थियोंको अध्यापन करा रहा था तब आपके दर्शनार्थ गह्वरवनमें गया था। मुझको तो पुत्रेच्छा नहीं थी तथापि स्वयं कृपा करके मुझको पुत्रदानार्थ अचानक हाथमें आयी हुई श्रीजीकी बीड़ी आपने मुझे दी जिससे दसवें मास ही पुत्रकी प्राप्ति हुई। इस विषयमें मुझको विशेष आश्चर्य तो यह हुआ कि बिना किसी मनुष्यके लाये अचानक श्रीजीकी बीड़ी आपके हाथमें कैसे आयी!' श्रीमहात्माजीके वर्तमान समयमें दो कन्या और एक पुत्र, ऐसे तीन सन्तान हैं।

लगभग सं० १९६५ में अपनी बड़ी पुत्रीका विवाह करनेके लिये लौटकर चिड़ावा आये। विवाहके पहले ही श्रीश्यामसुन्दरकी कृपासे चिड़ावानिवासी प्रसिद्ध सेठ श्रीरङ्गलालजी बसन्तलालजी सेकसरियाके मनमें श्रीमहात्माजीको देखते ही इच्छा उत्पन्न हुई कि श्रीमहात्माजीको यहीं अध्यापकके रूपमें रक्खा जाय तो उत्तम हो। सेठोंने अपनी निजी पाठशाला स्थापित की और महात्माजीको उसमें अध्यापकका कार्य सौंपा गया। आप श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायके परम वैष्णव थे। भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंमें प्रायः आपसमें द्वेष रहा करता है, किन्तु आप इस नियमके नितान्त अपवाद थे। आप वैष्णव होते हुए भी किसी अन्य देवके प्रति न तो अश्रद्धा रखते थे, न किसी तरहकी विद्वेष-भावना ही आपके मनमें थी। प्रत्युत कहा करते थे कि '**सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।**' धन्य है, सच्ची महानुभावता इसीका नाम है।

आपकी दिनचर्या बड़ी ही विचित्र थी। आप रात्रिके लगभग तीन बजे, कभी-कभी दो बजे ही उठ जाते थे और लघुशङ्कादिसे निवृत्त हो हाथ-पैर धोकर भजनसे उठकर शौचादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर फिर भजनमें बैठ जाते थे। इधर एक विद्यार्थी महात्माजीके सब कर्मोंसे निवृत्त होनेके पहले ही लगभग दिनके तीन बजे श्रीगोपालजीका प्रसाद तैयार कर लिया करता था। तब आप अपना मौन तोड़ते थे और प्रसाद पाते थे। भजनसमयमें यदि कोई विशेष कार्य होता तो लिखकर या संस्कृतभाषामें बोलकर सम्पादन करते थे। आप नित्य एक लाख हरिनामके जप करनेका संकल्प करते थे। आपका यह भी एक दृढ़ नियम था कि श्रीभगवान्‌के

अर्पण किये बिना जलतक भी ग्रहण नहीं करते थे और प्रसादके नामसे तो विषतकसे भी नहीं हिचकते थे। आपने कुछ सज्जनोंको वैष्णवदीक्षा भी दी जिनके नाम निम्नाङ्कित हैं—पं० चतुर्भुजजी महात्मा, पं० सीतारामजी फलड़िया, पं० विश्वेश्वरलालजी सुपोलवाले, पं० घनश्यामदासजी वैद्य—सिघाँना, पं० दुर्गादत्तजी शर्मा—झाडोदा, सेठ फूलचन्दजी कानूड़िया।

महात्माके सुपत्र नन्दकिशोरजी तथा आपके पौत्र राधाशरण तथा बाई कमलादेवीने भी आपसे ही वैष्णवदीक्षा ग्रहण की थी। पाठक! संसारमें एक-से-एक अधिक महात्मा हो चुके हैं, परन्तु उनमेंसे प्रायः सभीने गृह त्याग किया है, किन्तु हमारे चरितनायक पं० रामप्रसादजी उपनाम राधिकादासजी घरमें रहते हुए भी सच्चे त्यागी बने रहे। संन्यासी होनेपर भी संसारमें न फँसना कठिन जरूर है, परन्तु संसारमें रहकर भी संसारका न होना तो अत्यन्त कठिन है। महाभारतमें एक जगह लिखा है कि उस मनुष्यके विषयमें चोर और साहूकारका निर्णय नहीं हो सकता जिसके आगे सदा ताला बन्द रहा है। सच्ची परीक्षा तभी होती है जब खजाना खुला हो और मनुष्यके मनमें पापका प्रवेश न हो। कर्म करते हुए भी कर्मके फलको न चाहना अत्यन्त कठिन है। जिस तरह कमल जलमें रहकर भी जलमें नहीं भींगता उसी तरह सन्त भी संसारमें रहते हुए संसारमें नहीं फँसते। यही साधारण मनुष्य और महात्माओंमें अन्तर है।

वैसे तो श्रीमहाराज प्रतिवर्ष दो बार अर्थात् श्रावण और फाल्गुनमें वृन्दावन अवश्य जाया करते थे, किन्तु श्रीवृन्दावनवाससे पूर्वके पाँच वर्षोंमें तो आपका ध्यान श्रीवृन्दावनकी तरफ विशेष आकर्षित हो गया था। दो वर्षोंमें श्रीमहाराजको अपने शरीरपातकी शङ्का हो गयी थी। अतः आपने निरन्तर श्रीवृन्दावनमें रहना ही निश्चय कर लिया था। सं० १९८९ के चैत्र मासमें श्रीमहाराज रुग्ण हो गये और साधारण चिकित्सासे कुछ लाभ नहीं हुआ। श्रीमहाराजका मन औषध ग्रहण करनेका कम था, परन्तु सेठोंके विशेष आग्रह तथा और भक्तोंके कहनेके अनुसार आपने दवा लेनी आरम्भ की किन्तु ईश्वरेच्छा और ही थी। आपके रुग्ण होनेसे आपकी धर्मपत्नी और पुत्र तथा सेठ गोरखरामजी तथा द्वारकाप्रसादजी आपके पास वृन्दावन चले गये और महात्माजीकी सेवा करने लगे। महात्माजीकी आज्ञानुसार वहाँपर

महीनों पहले आठ पहरका हरिकीर्तन होने लगा और कलियुगमें सत्ययुग-सा समय आ गया। आपने श्रीवृन्दावनवास होनेके पच्चीस दिन पहलेसे चिरमौनव्रत धारण कर लिया था और श्रीराधेश्याम शब्दके अतिरिक्त अन्य समस्त शब्दोंका उच्चारण करना त्याग दिया था। मौनावस्थामें एक बार आपने स्लेटपर लिखा कि सात दिन रासलीला तथा सात दिन श्रीमद्भागवतकी कथा अच्छे सुयोग्य विद्वानोंसे होनी चाहिये। महात्माजीकी कथनानुसार सात दिन रासलीला तथा सात दिन श्रीमद्भागवतका पठन निर्विघ्न हुआ। इस तरह सच्चे योगीका जीवन व्यतीत करते हुए श्रीमहाराजका सं० १९८९ श्रावण शुक्ला १३ को प्रातःकाल ९ बजे श्रीवृन्दावननिकुञ्जवास हो गया और हमारी दृष्टिमें सदाके लिये एक दुर्लभ महापुरुषका अभाव हो गया। श्रीमहात्माजीने जिस समय अपनी मानवलीला संवरण की, उस समय उस स्थानमें श्रीप्रभुकी ऐसी अद्भुत लीला देखनेमें आयी कि कुछ लिखनेमें नहीं आता;- वहाँपर तुलसीजीका थाँवला था तथा श्रीराधेश्यामके चित्र लगे हुए थे। आप सिधारे उस समय एक ऐसी अलौकिक सुगन्धका विकास हुआ कि मानो आकाशसे अदृष्ट पुष्पवृष्टि हुई हो, या श्रीभगवान् स्वयं पधारे हों और उनके श्रीअङ्गकी दिव्य गन्ध हो। उस समय श्रीमहात्माजीकी सेवामें जो शिष्य थे और उन्होंने जो सेवा की सो सर्वथा सराहनीय है। ईश्वर उनकी श्रद्धाभक्ति बढ़ावें और साथ ही महात्माजीके परिवारको भी अपनी भक्ति दें।

[मुझे भी भक्तप्रवर पं० रामप्रसादजीके चरणदर्शनका सौभाग्य कई बार हुआ था। वास्तवमें आपकी भक्ति बहुत ही ऊँची थी। श्रीराधेकृष्णका नाम लेते ही आपकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आते थे। दीनताकी तो आप मूर्ति ही थे। भगवान्‌का नाम लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति आपकी दृष्टिमें भक्त था। आप बड़े भारी विद्वान् और ब्राह्मण होनेपर भी भक्तमात्रके चरणरजको ग्रहण करना चाहते थे। हृदय ऐसा सरल और शुद्ध था कि आपकी दृष्टिमें शायद ही किसीका दोष दीखता था। मैंने कई बार परीक्षा करके दैवी सम्पत्तिका विशेष विकास आपमें देखा। श्रीराधेश्यामके नाम और लीलापर आप मुग्ध थे। परन्तु भगवान्‌के किसी भी स्वरूपसे आपको अरुचि नहीं थी। सुना है एक बार कहीं श्रीरामलीला हो रही थी। आप देखने पधारे। भगवान्, श्रीराम, श्रीलक्ष्मण तथा माता सीताजीके स्वरूपोंको देखते ही आप प्रेमावेशमें बेसुध हो गये। आपने श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये। औरोंकी दृष्टिमें वह रामलीलाके एक बालक थे, परन्तु आपकी दृष्टिमें साक्षात् भगवान् श्रीराम ही थे। आप स्तवन करने लगे। उस दिन रामलीला रुक गयी। परन्तु असली रामलीला तो हो ही गयी। आपकी साधुता, श्रीकृष्णैकपरायणता, नामप्रेम, विनय आदिका जब-जब स्मरण होता है तब-तब हृदयमें पवित्रताका अनुभव होता है। मेरे प्रति आपका बड़ा ही स्नेह था। और इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ—सम्पादक]

(कल्याण वर्ष ९, पृष्ठ १३२९)

******

उत्तरकाशीके स्वामी कैवल्याश्रम

(लेखक—स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती)

उत्तराखण्ड श्रीगङ्गाजीकी उस क्रीडास्थलीका शुभ नाम है जहाँ देवाधिदेव महादेव श्रीविश्वनाथकी महिमाका ज्वलन्त आभास दिखानेके लिये हिमाच्छादित पर्वतोंका परस्पर कलह हो रहा है—कोई पर्वत अपने उत्तान शृङ्गको चमका-चमकाकर कह रहा है कि मैं सबसे ऊँचा हूँ, कोई अपनी सघन वनमालापर फूला नहीं समाता, किसीको अपनी गुफाओं और कन्दराओंपर गर्व है, कोई अपने गुप्त स्थानोंपर प्रसन्न होकर विरक्त तपस्वियोंपर अभिमान कर रहा है, किसीको अपने गर्भमें छिपी हुई हीरा, सुवर्ण तथा अन्य खनिज पदार्थोंकी सुरक्षित खानोंका ख्याल है, कोई अपनी छातीपर इतस्ततः निवास करनेवाली निर्धन भोली प्रजापर इतरा रहा है और कोई अपने दुर्लभ दृश्योंकी दुहाई मचा रहा है, तथा कोई अपने विकट मार्गों और सिंह, चीता आदि भयानक हिंस्र जीवोंका भय दिखा रहा है।

इस उत्तराखण्डके गढ़वाल राज्यमें एक अत्यन्त रमणीक स्थान है जिसको उत्तरकाशी कहा जाता है। उत्तरकाशी श्रीविश्वनाथकी छोटी-सी नगरी है। श्रीभागीरथी पतितपावनीका प्रवाह है। हिमालयका गर्भ है और शीतल जलवायुका अधिष्ठान है। यह स्थान अपनी महिमाके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है। साधु, महात्मा और एकान्तवासके अभिलाषी इस पुण्यतीर्थका महत्त्व भली प्रकार जानते हैं। यह स्थान विरक्त महात्माओंकी शान्त तपोभूमि है, अतएव इसको संसार उत्तराखण्डके तपस्वियोंका केन्द्र समझता है। यहाँ अनेक महात्माओंका निवास है और प्रत्येक महात्मामें कुछ-न-कुछ विशेषता और विलक्षणता है—कोई श्रुति-श्रवणमें तत्पर है, कोई मौनावलम्बनकर मनन कर रहा है, कोई उपेक्षा करता है तो कोई तितिक्षा करता है, किसीको सत्संगसे प्रेम है तो किसीको जनसमाजसे ही वैमनस्य है, कोई योगाभ्यासमें लगा है तो कोई पठन-पाठनमें दत्तचित्त है। अस्तु।

स्वामी कैवल्याश्रम उत्तरकाशीके प्रसिद्ध प्राचीन महात्मा थे। आपमें वे सभी गुण थे जो किसी ब्रह्मनिष्ठ पुरुषमें होने चाहिये। गत मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीको आप असार संसारको त्यागकर सदैवके लिये अपना स्थान रिक्त कर गये हैं। आप उत्तरकाशीके साधुसमाजमें माननीय और पूजनीय

समझे जाते थे। आप बालब्रह्मचारी और योगी थे। स्वामीजीके सदाचारकी उनके विरोधियोंपर भी धाक बैठी हुई थी। एक निर्भीक सत्यवक्ताके रूपमें आप साधुसमाजके नेता थे। ऐसे ज्ञाननिष्ठ महात्माके ब्रह्मलीन हो जानेसे उत्तरकाशी साधुसमाजको बड़ा ही धक्का लगा है।

पंजाब प्रान्तके जालन्धर जिलेमें फराला नामक एक बड़ा ग्राम है। यह ग्राम तहसील नवाँशहरमें 'बंगा' के पास है, यही ग्राम स्वामीजी महाराजकी जन्मभूमि है। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पितामह पं० काहनचंदजी और पिता पं० रलियारामजी थे। सुना गया है कि आपके भाईका नाम पं० बाबूरामजी था। स्वामीजी छोटी अवस्थामें ही घरसे निकल आये थे और ब्रह्मचारी बनकर गङ्गातटपर विचरा करते थे। आप गङ्गाके किनारे-किनारे महात्माओंका दर्शन लाभ करते और विद्याध्ययन करते हुए श्रीजगन्नाथजीतक जा पहुँचे थे और वहाँसे रामेश्वरम् तथा अन्य तीर्थस्थानों और देवमन्दिरोंकी यात्रा करते हुए द्वारकाजी होकर हरिद्वार आ गये थे। उन दिनों स्वामी हीरादासजी अज्ञातभिक्षु बड़े प्रसिद्ध महात्मा भी हरिद्वारमें पधारे हुए थे। ब्रह्मचारीजी उनकी सेवामें प्रायः जाया करते थे और उनके लोकोत्तर अनुभवोंसे लाभ उठाया करते थे।

एक दिन ब्रह्मचारीजीने अज्ञातभिक्षुजीसे दीक्षाके सम्बन्धमें बात की तो भिक्षुजीने संन्यासजीवनकी भयङ्कर कठिनाइयोंका दिग्दर्शन कराकर कहा कि आप अभी संन्यास-आश्रमका विचार मत करें। स्वामीजी बालकपनसे ही दृढ़ विश्वासी थे। आपने कहा—भगवन्! कुछ भी क्यों न हो, मैं संन्यासीजीवनका निश्चय कर चुका हूँ, मैं अपना निश्चय बदल नहीं सकता। कृपा करके आप मुझे अपनी शरणमें ले लें। आपकी अँगुली पकड़कर मैं भी भवसागरसे पार हो जाऊँगा।

अज्ञातभिक्षुजीने आपादमस्तक एक गम्भीर दृष्टिसे ब्रह्मचारीजीको देखा और कहा कि पूर्वकाशीको चले जाओ और विज्ञानमठके स्वामी अनन्ताश्रमका सहारा लो। यह सुनकर भिक्षुजीका आशीर्वाद ले ब्रह्मचारीजी पूर्वकाशी पहुँचे और दण्डी स्वामी अनन्ताश्रमजीको सेवामें रहने लगे। कालान्तरमें आप स्वामीजीके शिष्य हुए और दण्ड ग्रहण करके स्वामी कैवल्याश्रमके नामसे प्रख्यात हुए। काशीमें कुछ काल रहकर आपने गुरुसेवाद्वारा योग और वेदान्तके रहस्योंका अनुशीलन किया। एक दिन शान्त जलवायुकी खोजमें पूर्वकाशीको नमस्कार करके उत्तर दिशाको चल पड़े और मार्गमें दण्डके विषयमें अड़चन

देखकर निश्चय कर लिया कि दण्डका विसर्जन कर देना ही श्रेयस्कर है। तदनुसार तिथि-वारकी अनुकूलताका विचारकर दण्ड त्याग कर दिया गया। अब स्वामीजी त्यक्तदण्डी होकर उत्तराखण्डको चल पड़े। उन दिनों संवत् १९४८ का कुम्भका मेला था और हरिद्वारमें साधु-महात्माओंका खूब समारोह था। स्वामीजी भी कुम्भस्नानपर हरिद्वार पहुँच गये और महात्माओंके सदुपदेशोंसे लाभ उठाने लगे। जब कुम्भ हो चुका तो आप हृषीकेश आदि स्थानोंसे होते हुए गङ्गोत्तरीकी ओर चल पड़े। जब उत्तरकाशी पहुँचे तो यहाँकी स्थानिक सुन्दरता और शान्तिको देखकर स्वामीजी ऐसे मुग्ध हुए कि जीवनपर्यन्त यहीं रहना ही निश्चय कर लिया। तबसे लेकर मृत्युपर्यन्त आप यहीं रहे। कभी-कभी आप गङ्गोत्तरीतक घूमने चले जाया करते थे, परन्तु उत्तरकाशीसे नीचे नहीं उतरते थे। यदि कोई साधु नीचे देश जानेका विचार करता तो आप कहा करते थे कि—'बड़े भाग्यसे यहाँ आये हो, अब नीचे मत जाना।' इस प्रकार स्वामीजी ४३ वर्षसे लगातार उत्तरकाशीमें निवास करते थे।

स्वामी मुक्तिनाथजी वरुणासङ्गमपर ३० वर्ष लगातार रहकर काशीवास कर रहे हैं। आप स्वामीजीके अनन्य कृपापात्र रहे हैं। एक दिन आपने माण्डूक्यकारिका शाङ्करभाष्यसहित मोटे अक्षरोंमें स्वहस्तलिखित तैयार करके स्वामीजी महाराजको भेंट की और कहा, 'स्वामीजी, कुछ परमार्थका उपदेश दीजिये।'

स्वामीजीने कहा—सुनो, मुक्तिनाथजी! गौडपादने कहा है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

अर्थात् 'न किसीकी उत्पत्ति है, न किसीका निरोध है; न कोई बद्ध है और न कोई साधक है; न कोई मुमुक्षु ही है, न कोई मुक्त ही है। यही परमार्थता है।' इसीको वास्तविकता कहना चाहिये। मुक्तिनाथजी! यह बन्धन और मोक्ष तथा उत्पत्ति और विनाश परस्पर सापेक्ष हैं और आप जानते ही हैं कि अपेक्षा द्वैत—दो वस्तुओंमें ही होती है, एक—अद्वैतमें कभी नहीं। अतः मेरी तो यही प्रार्थना है कि अद्वैतमें निष्ठा रक्खो—यही परमार्थ है।

स्वामीजी हठयोगके अच्छे जानकार थे, आप प्रायः कहा करते थे कि स्वामी रामतीर्थ और स्वामी सियाराम हमारे पास रहकर कुछ ले गये हैं।

स्वामीजी माण्डूक्यकारिकाके बड़े प्रशंसक थे। एक दिन मुझसे कहने लगे—नित्यानन्दजी! मैं वृद्ध हो गया हूँ, अब यह इच्छा है कि शाङ्करभाष्यसहित

माण्डूक्योपनिषत्कारिका सुन लूँ। सौभाग्यसे तुम यहाँ आ गये हो—हमको कारिका सुना दो। मैंने कहा—भगवन्, यह ग्रन्थ तो आपने बीसों बार सुना और मनन किया है। किसी और ग्रन्थके विषयमें कहिये तो विचार करें। कहने लगे—यह ग्रन्थ अद्वैतावादका मूल आधार है—इसको जितना सुनो उतना ही निश्चय कराता है।

स्वामीजीके आग्रहसे कारिकाकी कथा होने लगी। वक्ता (लेखक) और श्रोताओंको बड़ा आश्चर्य होता था जब स्वामीजी प्रत्येक श्लोकको विचारपूर्वक सुनते और शङ्का उत्थापन करते थे। बीच-बीचमें विशेष-विशेष श्लोकोंपर विचारधारा सुनकर तो बहुत ही प्रसन्न होते और वक्ताको अनेक शुभ वचनोंसे स्मरण किया करते थे।

एक दिन रायबहादुर पं० कुलानन्दजी, रिटायर्ड एसिस्टैण्ट इन्जिनियर, स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। राय साहिब एक सात्त्विक ब्राह्मण हैं, चार-पाँच वर्षसे उत्तरकाशीमें निवास कर रहे हैं। आप ८५ वर्षके वृद्ध होते हुए भी स्वामीजीकी कुटियापर जाया करते रहे हैं। आपने स्वामीजीसे मन्त्रदीक्षा ली है और तन-मन-धनसे गुरु सेवा करते आये हैं और आजकल भजन-पूजनपूर्वक काशीवास कर रहे हैं। राय साहिबने कहा—स्वामीजी, कोई उपदेश दीजिये, जिससे चित्त शान्त हो। स्वामीजीने कहा—राय साहिब, इस श्लोकको याद कर लो और इसके अर्थका चिन्तन किया करो। श्लोक यह है—

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा।
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः॥

अर्थात् न तो साकार है न निराकार है, न यह है न वह है, न संसारसे भिन्न ही है न अभिन्न ही है—वह तो केवल, खालिस है; वही शिव है। और अच्छी तरह समझना हो तो ऐसा समझ लो कि—

हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति॥

अर्थात् 'हरि ही जगत् है, जगत् ही हरि है, जगत्से या हरिसे शरीर भिन्न नहीं है।' जिस पुरुषका ऐसा निश्चय हो गया है वही परमार्थका रहस्य समझ सकता है और भवसागरको पार कर सकता है।

स्वामीजी स्वाध्यायके बड़े प्रेमी थे। आपके यहाँ अध्यात्मपुराण, योगवासिष्ठ, गीता आदिकी बराबर कथा होती रहती थी। एक दिन लेखकने 'स्वाराज्यसिद्धि'

की प्रशंसा कर दी तो इसी बातके पीछे पड़ गये और उसकी कथा सुननेपर आग्रह प्रकट किया। मैं उन दिनों इस दार्शनिक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद कर रहा था, परन्तु कार्य रोककर कथा सुनानी पड़ी।

तीन वर्ष हुए प्रसिद्ध योगी श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती जब अपनी गङ्गोत्तरीकी गुफाको प्रस्थान करने लगे तो स्वामीजीके दर्शनोंको पधारे। स्वामीजीने कहा—शिवानन्दजी, आप प्रतिष्ठित महात्मा हो, विचारशील विद्वान् भी हो, आपको देखकर मैं बड़ा प्रसन्न होता हूँ। आप-जैसे योग्य महात्माओंके निवासके लिये ही उत्तराखण्ड है। आप निश्चिन्त होकर आराधना करें।

स्वामी शिवानन्दजीने कहा—सुनिये स्वामीजी! आप हमारे सबके पूजनीय हैं। आपके चरणचिह्नोंपर चलकर ही हमलोगोंका कल्याण होगा। परन्तु यह क्या बात है कि आजकल कुछ दण्डी साधु स्त्री रखने लगे हैं जिससे सभी साधुओंकी, विशेषतः दण्डियोंकी बड़ी निन्दा फैल रही है। आप इसका प्रतिकार क्यों नहीं करते?

स्वामीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया—भगवन्! आप यथार्थ कह रहे हैं। यहाँ अच्छे-अच्छे महात्मा हैं, दो-चारके दुराचारसे सारा उत्तराखण्ड दूषित नहीं कहा जा सकता। यहाँ ऐसे-ऐसे विद्वान्, विरक्त, जितेन्द्रिय और मर्यादारक्षक महात्मा निवास करते हैं जिनकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि एक मछली भी तालाबको गन्दा कर देती है। आप निराश मत हों, आप महानुभावोंके पुरुषार्थ और भगवान्‌की कृपासे उत्तराखण्डकी पवित्रता बराबर सुरक्षित रहेगी।

शिवानन्दजीने पूछा, 'स्वामीजी, स्त्री रखनेके विषयमें आपकी क्या सम्मति है—साधुको स्त्रीसम्बन्ध रखना उचित है कि नहीं?'

स्वामीजीने कहा, 'हमारी सम्मति कोई अलग अपने घरकी तो है नहीं। हाँ, जैसा शास्त्रका सिद्धान्त है—वही हमारी भी सम्मति है। आप जानते ही हैं कि विष्णुपुराणमें कहा है—

निःसङ्गता मुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः।
आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः॥

अर्थात् 'साधुका कर्तव्य है सङ्गदोषसे परे रहे। निःसङ्गता मोक्षका सच्चा मार्ग है। सब दुष्ट व्यसनों और दोषोंका कारण 'सङ्ग' ही है। आरूढ़ योगी भी सङ्गदोषके कारण पतित हो जाते हैं—साधारण तपस्वियोंकी तो गिनती ही क्या है।' आप विचार करके देखें—विश्वामित्र और पराशर जैसे

महर्षि भी सङ्गदोषसे ही पतित हुए। क्या भगवान्‌ने गीतामें जो कहा है—'**सङ्गात्सञ्जायते कामः**'—सो क्या व्यर्थ ही कहा है? और स्मृतियोंमें यह कथन किया है कि '**न पश्येल्लिखितामपि**'—स्त्रीकी तसवीर भी मत देखो, सो क्या प्रलापमात्र है? नहीं-नहीं कदापि नहीं। शिवानन्दजी, मेरी तो सब साधु-महात्माओंसे हाथ जोड़कर यही प्रार्थना है कि स्त्रीका सङ्ग मत करना! यह मर्यादाका उल्लङ्घन है। ऐसा करना ठीक नहीं! याद रखो, '**अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः**'—यह कथन स्त्री-पुरुषोंके स्वभावपर दीर्घ कालतक मनन करनेके पश्चात् ही निश्चित किया गया है।

स्वामी शिवानन्दजी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—स्वामीजी, आप-जैसा निर्भीक सत्यवक्ता महात्मा हमारा नेता रहे तो साधुसमाजका बड़ा हितसाधन हो।

स्वामी गतवर्ष चैत्र मासमें जब अर्धाङ्गसे बीमार हो गये तो वैद्यराज श्रीस्वामी प्रद्युम्नानन्द तीर्थराजके द्वारा चिकित्सा होने लगी। एक दिन वृद्ध वैद्य स्वामीजीने पूछा—स्वामीजी, शरीरका क्या हाल है?

स्वामीजी बोले—भगवन्, शरीरका क्या पूछते हो? जिसका नाम ही शरीर है—जिसका काम ही जीर्ण-शीर्ण होकर नष्ट होना है, उसका पूछना किस कामका! शरीरका ख्याल करो तो शोक-मोह आ जाते हैं और आत्माका विचार करो तो शोक-मोह ठहर नहीं सकते। उपनिषद्में कहा है—

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

अर्थात् यह आत्मा शरीरोंमें रहकर उनके सुख-दुःखसे सर्वथा पृथक् है, नाशवान् पदार्थोंसे सम्बन्ध रखता हुआ भी अविनाशी है, महान् शक्तिशाली है और व्यापक है—ऐसा जो जान लेता और जान करके फिर धैर्यसे सुख-दुःखको सहन करता है उस पुरुषको शोक नहीं होता। **शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्।**

एक दिन स्वामीजीकी नाड़ी मन्द हो गयी, मालूम होता था कि कफके अत्यधिक होनेसे गला भी रुक गया है और हृदयपर आघात होना चाहता है। वैद्य स्वामीजीने समीप बैठकर देखा तो मालूम हुआ कि आप '**शिवोऽहम्**' जप कर रहे हैं।

पंजाबके स्वनामधन्य गोस्वामी गणेशदत्तजी श्रीस्वामीजीके श्रद्धालु प्रेमी हैं। आप जब गत वर्ष उत्तरकाशी पधारे तो स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित

हुए। प्रसङ्गवश आप बोले—स्वामीजी, मुझको तो गीताका 'प्रवृत्तिमें निवृत्ति' वाला सिद्धान्त बहुत अच्छा लगता है। साधुलोग भी यदि ज्ञाननिष्ठा रखते हुए लोकोपकार करें तो बहुत अच्छा हो।

स्वामीजीने कहा—सुनिये गोस्वामीजी, प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों परस्पर विरोधी हैं। एकमें दूसरी न तो साधक होकर ही रह सकती है, न बाधक होकर। हाँ, यह ठीक है कि गीतामें निष्काम कर्मयोगका साधनरूपमें वर्णन किया गया है जो कि सर्वथा मान्य ही है। आप-जैसे सम्भावित व्यक्ति यदि चित्तशुद्धिके लिये तथा लोकोपकारके लिये इस मार्गमें प्रवृत्त हों तो यह बहुत ही सौभाग्यकी बात है। बाकी, रहा साधुओंका लोकसंग्रहके निमित्त कर्ममार्गमें प्रवृत्त होना, सो यदि कोई व्यक्तिगत रूपसे चाहे तो प्रवृत्त हो सकता है। परन्तु उसको यह स्मरण रखना चाहिये कि—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

अर्थात् जो अन्तर्मुख होकर आत्मामें रमण करता हुआ अपने स्वरूपसे ही सन्तुष्ट है और उसीमें तृप्त है—ऐसे आत्मनिष्ठके लिये कोई भी कार्य कर्तव्यरूपसे नहीं है।

स्वामीजी यद्यपि दण्डी थे तथापि पन्थका दुराग्रह आपमें लेशमात्र भी नहीं था, आप सभी सम्प्रदायके साधुओंका सम्मान करते और समानरूपसे व्यवहार करते थे। उनकी कुटियामें निर्मला, दशनाम संन्यासी, उदासी, गरीबदासी आदि सभी विरक्त महात्मा स्थान पाते थे।

स्वामीजीमें एक और विशेषता थी—आप वृद्ध होकर भी बालकस्वभाव थे। एक दिन महात्माने कहा—स्वामीजी, अब तो आप वृद्ध हो गये हैं, अब तो बालकपन छोड़ें!

आपने कहा—वाह, बालक और वृद्धका तो एक ही स्वभाव होता है। और देखो, उपनिषदमें लिखा है कि 'पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्'—अर्थात् ज्ञानी होकर बालक बन जाओ।

स्वामीजी कोई बात अपने दिलमें नहीं रखते थे। आप पहले ही कह देते थे कि हमारे साथ सोच-समझकर बात करना। एक दिन राय साहिबने कहीं किसीसे कह दिया कि हमारे स्वामीजीका स्वभाव हलका है। स्वामीजीको यह बात मालूम हो गयी, स्वामीजीने कहा—नित्यानन्दजी,

राय साहिबको समझा देना कि तूँबा हलका होता है—हलकी वस्तु पानीमें नहीं डूबती, भवसागरसे तरनेके लिये 'हलका' होना परमावश्यक है।

हृषीकेशमें स्थित बाबा काली कमलीवाले क्षेत्रके अधिष्ठाता श्रीमान् बाबा मानीरामजी स्वामीजीके बड़े श्रद्धालु हैं। आपको जब मालूम हुआ कि स्वामीजी अर्धांगसे पीड़ित हैं तो आपने ओषधि, अनुपान, वस्त्र, नौकर आदिका पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया और स्वयं उत्तरकाशी पधारे। एक दिन जब खराब हालत देखी तो बाबाजीने कहा—स्वामीजी, यहाँ इस रोगकी चिकित्साके साधन नहीं हो सकते, आप मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करें तो मैं आपको देहरादून वा हृषीकेश ले चलनेका प्रबन्ध करूँ! वहाँ डाक्टरों और हकीमोंकी भी सलाह ली जा सकती है।

स्वामीजीने कहा—बाबाजी, आपका प्रेम सराहनीय है। आप इस शरीरकी चिन्ता न करें और देखें। मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि मुझसे उत्तरकाशी मत छुड़ावो। शरीरका कुछ पता नहीं, आप आग्रह न करें।

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

हम ओषधि नहीं खाना चाहते, परन्तु ये लोग मानते नहीं। अब इतनी तो अवश्य कृपा करें कि उत्तरकाशीसे न ले जावें।

और भी कई महात्माओंने कहा कि नीचे चले जाइये परन्तु स्वामीजीने अपना विचार न बदला और अन्तकालतक यहीं रहे।

स्वामीजी महाराजसे संन्यास दीक्षा दो व्यक्तियोंको ही प्राप्त हुई—एक स्वामी शिवारण्यजी, दूसरे स्वामी पूर्णाश्रमजीको। स्वामी पूर्णाश्रमजी विरक्त महात्मा हैं। आप प्राय: बद्रीनारायणकी तरफ विचरते हैं। स्वामी शिवारण्यजी लगातार सोलह-सतरह वर्षोंसे स्वामीजीकी सेवामें रहे हैं और सच तो यह है कि स्वयं वृद्ध और रोगी होते हुए भी जिस उत्साह, जिस श्रद्धा और जिस भक्तिसे आपने गत दस मासमें गुरुसेवा की है वह बहुत ही कम देखनेमें आयी है।

भगवान् कृपा करें कि जैसी आत्मनिष्ठा और निर्भीक सत्यवादिता स्वामी कैवल्याश्रमजीने अपने जीवनकालमें दिखायी है प्रत्येक साधु उसको धारण करे और अपने तथा लोगोंके सच्चे कल्याणका कारण बने।

******

२२. अन्तरंग वार्तालाप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
२३. भगवान श्रीकृष्णकी मधुर बाललीलायें	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५०.००
२४. यज्ञपत्नियों पर कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
२५. रस और आनन्द	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
२६. भगवत्कृपाके अनुभव	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
२७. योग एवं भक्ति	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
२८. भारतीय नारी	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
२९. भगवत्कृपाके चमत्कार	सम्पादक–भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
३०. आस्तिकताकी आधार–शिलाऐं	श्रीराधा बाबा	३५.००
३१ महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधाबाबा	३०.००
३२. केलि–कुञ्ज	श्रीराधाबाबा	७०.००
३३. परमार्थके सरगम	श्रीराधाबाबा	३०.००
३४. पद–रत्नाकर—एक अध्ययन	श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी	३०.००
३५. दिव्य हस्तलिखित संकेत	संयोजक–श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी	५०.००
३६. श्रीराधा–गुण–गान		३०.००
३७. श्रीकृष्णजन्माष्टमी–महोत्सव	संकलनकर्ता–श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी	१०.००
३८. श्रीराधाकृष्णकी मधुर लीलायें		३०.००

हमारे प्रकाशन एवं कैसेट प्राप्तिके अन्य स्थान

गोरखपुर :–श्रीहरिकृष्ण दुजारी, पो०–गीतावाटिका, गोरखपुर. फोन–२२८४७४२

कलकत्ता :– श्रीसुशीलकुमार मूँधड़ा, ८, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, (८ वाँ तल्ला)
फोन० २४६४०६००, २४६६२६४१
२–श्रीकमलकुमार अग्रवाल, ४२, विवेकानन्द रोड, कोलकाता–७,
फोन–२२७२८०७,

वाराणसी :—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट, दुर्गाकुण्ड रोड

दिल्ली :— श्रीमोहनलाल दुजारी ५०४, स्काईलार्क, ६० नेहरू प्लेस, दिल्ली–१९
फोन–२६४३८६०५, २६४६५२८४

गाजियाबाद :—श्रीशिवकुमार दुजारी के०आई० १५५, कविनगर, गाजियाबाद–२
फो०–(०१२०) २७०३११३

वृन्दावन :—खण्डेलवाल एण्ड सन्स, अठखम्भा बाजार, वृन्दावन
फोन : (०५६५) २४४३१०१ (आ), २४४२१०० (नि०)

स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश):—श्रीविष्णु पुस्तक भण्डार, स्वर्गाश्रम

मथुरा– श्रीकृष्ण जन्मभूमि सेवा संस्थान, फोन–२४२३७१४

जयपुर– श्रीहरिः पुस्तक प्रचार केन्द्र, बुलियन बिल्डिंग, हल्दियोंका रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर–३०२००३, फोन– २५७०६०२

भाईजी पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार "कल्याण" (गीताप्रेस) के आदि–सम्पादक के चुने हुए भावपूर्ण, प्रवचनों एवं पदों की कैसेट सूची।

contact Shri Shri Hari Krishna Dujari p.o.Geeta Vatika
Gorakhpur U.P.(INDIA)phone +91/05512284742 for

गीतावाटिका प्रकाशन

पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर—२७३००६

फोन : (०५५१) २८४७४२, २८४५८२, २८२१८२
E-Mail:- rasendu@vsnl.com

हमारे प्रकाशन

१. श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति		६०.००
(पू० श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी) संयोजन श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी		
२. भाईजी चरितामृत	(पू० भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग)	५०.००
(संयोजन श्रीश्यामसुन्दजी दुजारी)		
३. सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
४. व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५.००
५. परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
६. सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
७. वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३५.००
८. समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
६. प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
१०. भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	५.००
११. श्रीराधाष्टमी जन्म-व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	५.००
१२. शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२०.००
१३. रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३५.००
१४. पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५.००
१५. क्या, क्यों और कैसे?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
१६. साधकोंके पत्र		३०.००
१७. भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार		३०.००
१८. रोगोंके सरल उपचार		३५.००
१६. मेरी अतुल सम्पत्ति		
२०. श्रीशिव—चिन्तन		२५.००
२१. आस्तिकताकी आधार—शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	३५.००
२२. महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधाबाबा	३०.००
२३. केलि—कुञ्ज	श्रीराधाबाबा	७०.००
२४. परमार्थका सरगम	(श्रीराधाबाबा)	३०.००